RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / भोपाल / 261 / 2015-17 प्रकाशन तिथि 28 नवम्बर 2017

चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका नवम्बर 2017

गुड़िया भी सुंदर
बुढ़िया भी सुंदर
बुढ़िया की बेटी
सुंदर भी सुंदर

सुंदर गगन है
सुंदर समंदर
बुढ़िया का बेटा
चंदर भी सुंदर

बछिया भी सुंदर
पड़िया भी सुंदर
बुढ़िया का मुर्गा
कलंदर भी सुंदर

सुंदर

प्रभात

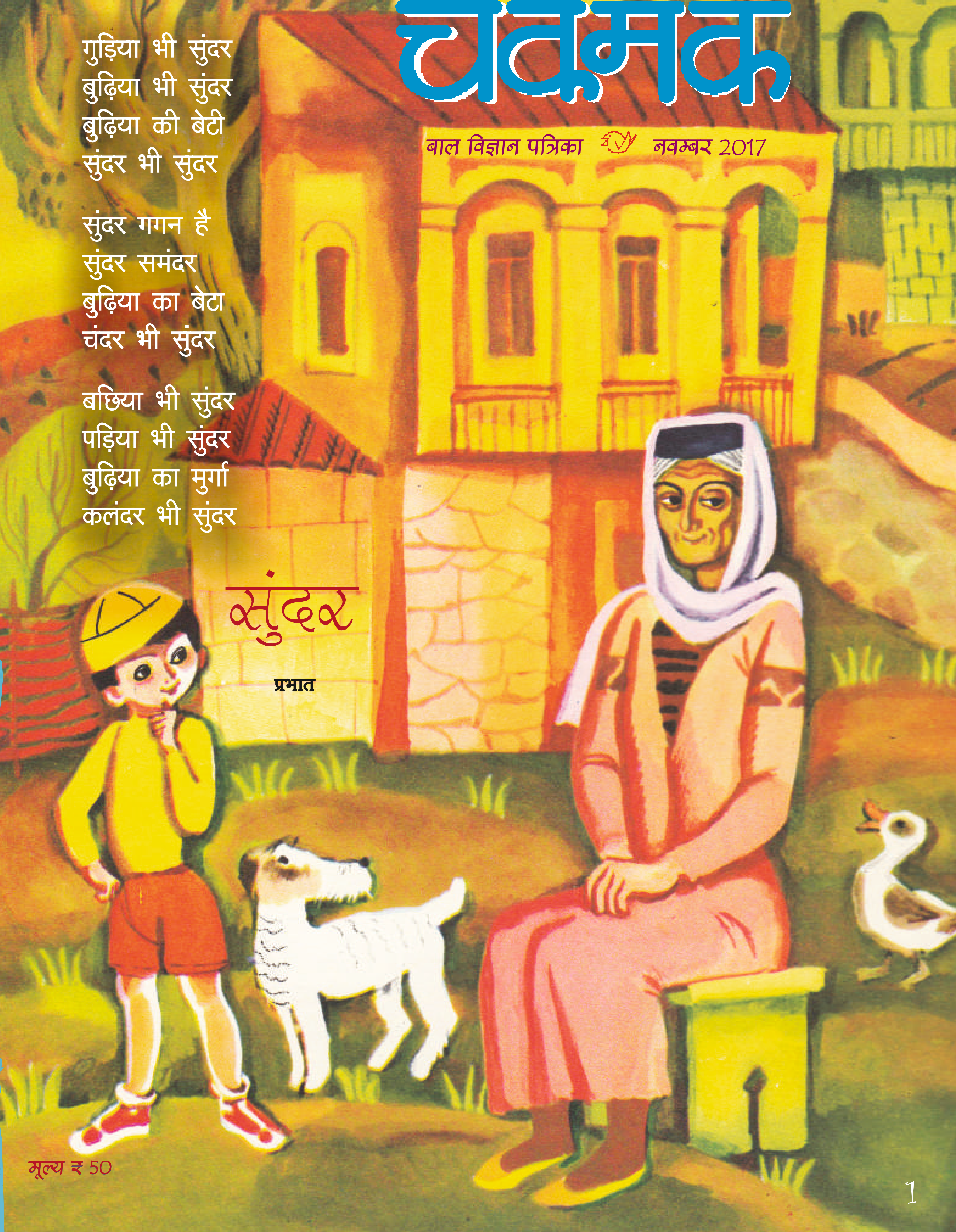

मूल्य ₹ 50

मज़दूर का जन्म

एक हथौड़े वाला घर में और हुआ!
हाथी-सा बलवान,
जहाज़ी हाथों वाला और हुआ!
सूरज-सा इन्सान,
तरेरी आँखों वाला और हुआ!!
एक हथौड़े वाला घर में और हुआ!
माता रही विचार :
अँधेरा हरने वाला और हुआ!
दादा रहे निहार :
सबेरा करने वाला और हुआ!!
एक हथौड़े वाला घर में और हुआ!
जनता रही पुकार :
सलामत लाने वाला और हुआ!
सुन ले री सरकार!
कयामत ढाने वाला और हुआ!!
एक हथौड़े वाला घर में और हुआ!

केदारनाथ अग्रवाल

चित्रः कैरन हेडॉक

बाल विज्ञान पत्रिका

चकमक

अंक 374 नवम्बर 2017

इस अंक में

1 सुंदर - प्रभात
2 मज़दूर का जन्म - केदारनाथ अग्रवाल
4 मेरा पन्ना
5 रूसी क्रांति, नवम्बर 1917 - सी एन सुब्रह्मण्यम्
10 तुम्हारे घर में कौन सबसे ज़्यादा स्वतंत्र है?
14 रूसी क्रांति और आवास
16 कौन बड़ा, कौन छोटा? - कुमकुम रॉय
18 रूसी क्रांति और बच्चे
23 बकरा सच्चा प्यार करता है - फरीन
25 लंबे डग वाला लड़का - विनोद कुमार शुक्ल
33 अपनी प्रयोगशाला - प्रतिका
34 नाचघर - ईश्वर अल्लाह तेरे नाम - प्रियंवद
40 मेरा पन्ना
42 माथापच्ची
43 चित्र पहेली - कविता तिवारी
44 हम स्वतंत्रता से यह समझते है - कुमारी शालिनी

आवरण चित्र
ओतिया इओसेलिआनि

डिज़ाइन
कनक शशि

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
सी एन सुब्रह्मण्यम्
कविता तिवारी
सजिता नायर
भवानी शंकर
रुद्राशीष चक्रवर्ती

वितरण
झनक राम साहू

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

सहयोग
कमलेश यादव
ब्रजेश सिंह

विशेष सहयोग - इकतारा बाल साहित्य केन्द्र

एक प्रति :	50.00
वार्षिक :	500.00
तीन साल :	1350.00
आजीवन :	6000.00

सभी डाक खर्च हम देंगे।

चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं।
एकलव्य भोपाल के खाते में ऑनलाइन जमा करने के लिए विवरण-
बैंक का नाम व पता - स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, महावीर नगर, भोपाल
खाता नम्बर - 10107770248
IFSC कोड - SBIN0003867
कृपया खाते में राशि डालने के बाद इसकी पूरी जानकारी accounts.pitara@eklavya.in पर ज़रूर दें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. 462 016, फोन: (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्स: (0755) 2551108, e mail - chakmak@eklavya.in, e mail - circulation@eklavya.in, www.chakmak.eklavya.in, www.eklavya.in

दादा की चिड़िया

एक दिन जब हम बहुत छोटे थे तो हमारे दादा हमें बहुत खिलाते थे। तो हमारे दादा और दादी हमसे बहुत प्रेम करते थे। एक दिन हमारे दादा खत्म हो गए थे। तब हम बहुत छोटे थे और हम बहुत रोए थे। फिर हम धीरे-धीरे बड़े होने लगे तो हम यह बात भूल गए थे। तभी हम सात साल के हुए तो हमारी मम्मी ने बताया कि तुम्हारे दादा खत्म हो गए थे तो तुम बहुत रोई थीं। तभी वहाँ एक चिड़िया आ गई तो हमें ऐसे लगा कि जैसे वो हमारे दादा ही होंगे।

– रजनी, चौथी, राजकीय प्राथमिक विद्यालय सितारगंज, उत्तराखण्ड

– शांता, सातवीं, प्रोत्साहन केन्द्र दिल्ली

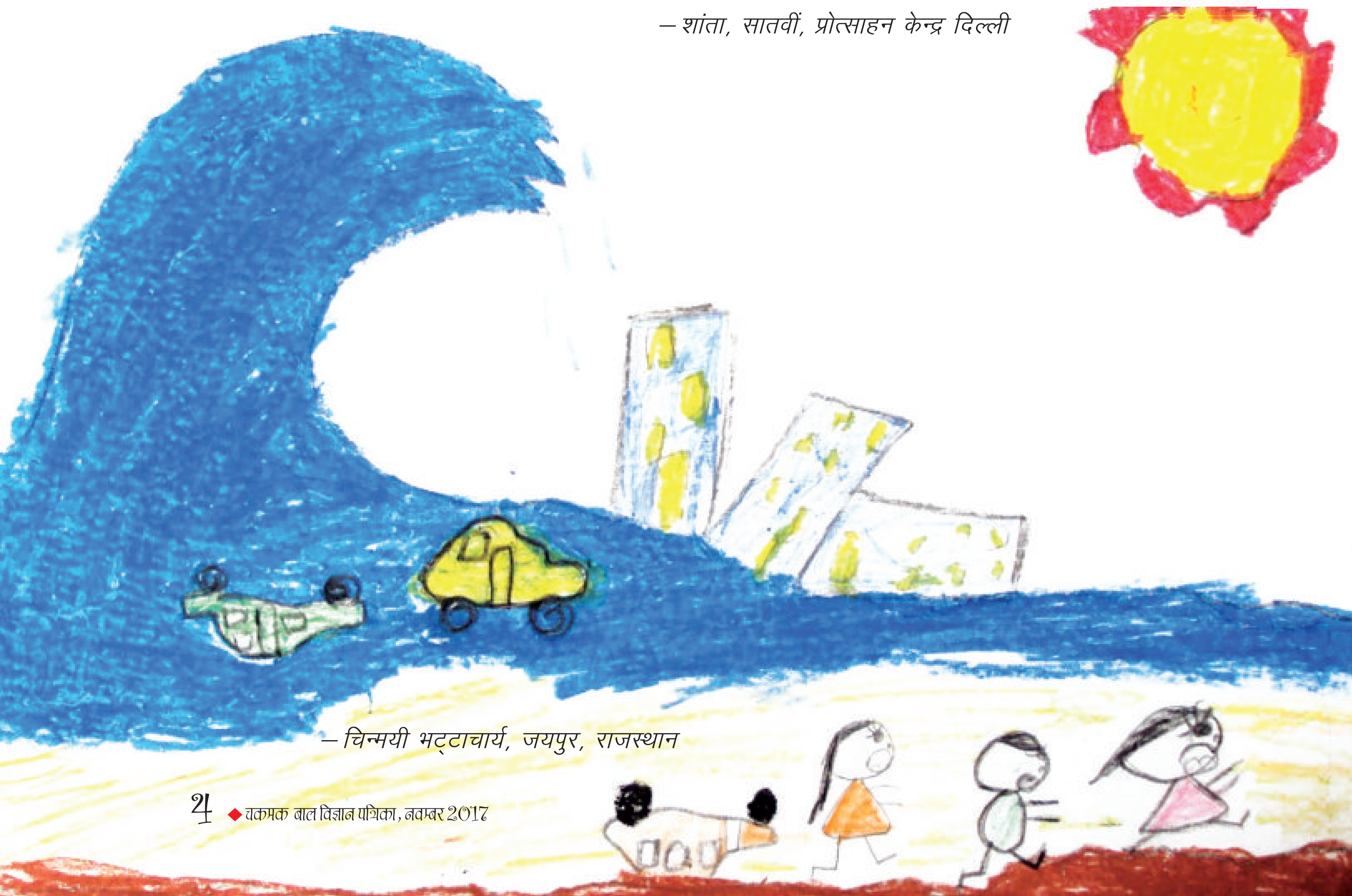

– चिन्मयी भट्टाचार्य, जयपुर, राजस्थान

सौ साल पहले...

रूसी क्रांति, नवम्बर 1917

सी एन सुब्रह्मण्यम्

ए सित्तारो का चित्र, '1917 के दिन'

इतिहास में ऐसे बहुत कम दौर रहे हैं जब लाखों भूखे मज़दूरों, किसानों और सैनिकों (जो खुद भी गरीब होते हैं) ने यह विचार किया हो कि पूरे समाज और व्यवस्था की बागडोर अपने हाथों में लें। ऐसे लोग जो अपने घर-परिवार, काम और मज़दूरी की ही चिन्ता करते थे और जिनके बारे में सभी का विचार था कि ये अशिक्षित, संस्कृति विहीन, नासमझ लोग हैं - अगर ये समाज को नियंत्रित करने लगे तो क्या अनर्थ हो सकता है! पूरा सामाजिक ताना-बाना इसीलिए बना है कि समाज को ऐसे दिन देखने न पड़े। कायदे-कानून, कोर्ट-कचहरी, मंदिर-मस्जिद, फिल्म-टीवी, जेल-पुलिस, सेना, संसद, युद्ध, स्कूल, कालेज.... सब यही सुनिश्चित करते हैं कि कभी यह नौबत न आ पड़े कि मुफ्लिस लोगों के मन में ऐसे विचार आ आएं...लेकिन एकाध सदी में कभी न कभी ऐसे मौके आ ही जाते हैं। तब प्रलय टूट पड़ता है। इंग्लैड में 1630 के दशक में और फ्रांस में 1789 से 1792 के बीच, रूस में 1917 में और चीन में 1949 में ऐसे ही कुछ हुआ।

ऐसे प्रलय में जो लोग लहर के ऊपर सवार हैं वे तर जाते हैं और वे जो उसके आड़े होते हैं, ध्वस्त हो जाते हैं। जाहिर है ऐसी युगांतकारी घटनाओं को देखने के नज़रिए अलग-अलग होते हैं। जो उस पर सवार थे, जो कुचले गए और जिनकी उम्मीदें जगीं, जो घबराए थे और वे जो सौ साल बाद उसके नतीजे को देख पाते हैं... सब की नज़रें अलग-अलग कहानी का बयान करती हैं। 1917 के क्रांतिकारी घटनाओं के ठीक बीच से यह उदाहरण पढ़ें।

अमेरिकी पत्रकार जान रीड क्रांति के ही दिन पहुँचते हैं, राजधानी से कुछ दूर एक छोटे शहर में। वह शहर अब भी पुरानी सरकार के हाथों था, मगर वहाँ भी क्रांति की हवा उठ रही थी। वहाँ रेलवे स्टेशन के द्वार पर उन्हें दिखते हैं दो सैनिक, जिन्हें घेरकर लगभग सौ दुकानदार, पूँजीपति, अफसर और छात्र खड़े हैं। सैनिकों व अन्य के बीच गरमा-गरम बहस जारी थी।

सैनिक सहमे और प्रताड़ित लग रहे हैं। एक लंबा युवा छात्र जिसके चेहरे पर तिरस्कार का भाव साफ था, अपना रामबाण तर्क दिए जा रहा था, “आप लोगों को यह तो समझ में आ रहा होगा कि अपने ही रूसी भाईयों पर बंदूक तानकर आप कातिलों और देशद्रोहियों के हाथ के कठपुतली बन गए हैं?”

सैनिक उसे समझाने की कोशिश करने लगा, “भाई तुम समझ नहीं रहे हो। दो वर्ग होते हैं, आप तो जानते ही हैं, पूँजीपति और मज़दूर। हम...”

“मुझे ये बेवकूफी मत सुनाओ।” छात्र ने सैनिक को रोकते हुए कहा। “तुम्हारे जैसे गंवार किसान किसी के उल्टे सीधे बात सुन लेते हैं और उससे कुछ जुमले पकड़ लेते हैं। फिर उसे बिना समझे तोते की तरह दोहराते रहते हैं। मैं मार्क्सवादी छात्र हूँ। मैं तुम्हें कहता हूँ कि तुम लोग समाजवाद के लिए नहीं लड़ रहे हो बल्कि जर्मनी के इशारे पर अराजकता फैला रहे हो।

“हाँ मैं जानता हूँ।” सैनिक ने कहा, अपने माथे पर बहते पसीने को पोछते हुए। “आप पढ़े लिखे हो और मैं तो एक सामान्य आदमी हूँ, लेकिन फिर भी मुझे लगता है....”

छात्र भर्त्सना के भाव से कहता है, “आप शायद यह मानते हैं कि लेनिन मज़दूरों का सच्चा हिमायती है?”(लेनिन के ही आग्रह पर उन दिनों मज़दूर सत्ता अपने हाथों लेने का प्रयास कर रहे थे।)

सैनिक दबे आवाज़ में कहता है, “हाँ मुझे ऐसा ही लगता है।”

“लेकिन दोस्त, क्या आपको मालूम है कि जर्मनी ने लेनिन को भेजा है और लेनिन ने जर्मनी से पैसे लिए हैं?”

“हाँ, लेकिन मुझे इन बातों के बारे में ज़्यादा कुछ नहीं मालूम है। लेकिन वो वही कह रहे हैं जो मैं और मेरे जैसे साधारण लोग सुनना चाहते हैं। वैसे दो वर्ग होते हैं, पूँजीपति और मज़दूर वर्ग...”

“बेवकूफ! दोस्त, क्या तुम जानते हो कि मैं एक क्रांतिकारी हूँ और मैं जेल गया हूँ...?”

“माफ कीजिए। मैं पढ़ा लिखा नहीं हूँ और मैं आपको पहचानता नहीं हूँ। शायद आप बहुत प्रसिद्ध हैं।”

“हाँ, मैं हूँ और मैं इन बोल्शेविकों का विरोध करता हूँ और मानता हूँ कि ये लोग हमारे प्यारे देश का विनाश कर रहे हैं और हमारे क्रांति का भी। इसके बारे में आपको क्या कहना है?” (बोल्शेविक लेनिन के राजनैतिक दल के सदस्य थे।)

सैनिक अपना सिर खुजलाते हुए कहता है, नहीं मैं कुछ नहीं कह पा रहा हूँ। वह बहुत प्रयास करके दिमागी कसरत कर रहा था। “मुझे तो स्पष्ट है मगर मैं पढ़ा लिखा नहीं हूँ। मुझे लग रहा है कि दो ही वर्ग हैं... मज़दूर और पूँजीपति...।”

इतने में छात्र अपना धैर्य खो देता है और कहता है, “फिर अपने बेवकूफी भरे जुमले शुरू कर रहे हो...।”

सैनिक लगा रहा और कहा, “दो ही वर्ग हैं और जो एक के साथ नहीं, वह दूसरे के साथ है...।”

(जान रीड, ‘दस दिन जब दुनिया हिल उठी’ से।)

ये दो नज़रिए सौ साल बाद आज भी कायम हैं– कुछ लोगों के लिए नवंबर 1917 की क्रांति सभ्यता का विनाश था तो कुछ लोगों के लिए यह नए सपनों के समाज का निर्माण की शुरुआत थी।

एक तरफ मध्यम वर्ग, बुद्धजीवी और संभ्रान्त लोग थे जो क्रांति को अपने ही तरीके से आगे बढ़ाना चाहते थे। वास्तव में क्रांति मार्च के महीने में शुरू हो चुकी थी, जब महिलाओं, मज़दूरों व सैनिकों ने ज़ार बादशाह के विरुद्ध बगावत का बिगुल बजा दिया था और उसे गद्दी छोड़नी भी पड़ी। इन्होंने अपने प्रतिनिधियों को चुनकर समितियों का गठन किया, जिन्हें वे 'सोवियत' कहते थे। सैनिकों का सोवियत, मज़दूरों का सोवियत, किसानों का सोवियत...। सोवियतों में लोग नीतियों पर बहस करते और आगे क्या करना है यह तय करते थे, लेकिन उन्होंने प्रशासन अपने हाथ में नहीं लिया। ज़ार के हाथ से सत्ता एक मध्यम वर्गीय संसद के हाथ आई थी। इस मध्यम वर्ग के लिए क्रांति का मुख्य मकसद पुराने सम्राट ज़ार और उसके सामन्तों के शासन को खतम करना था, जो मार्च 1917 तक पूरा हो चुका था। अब वे चाहते थे कि युद्ध में विजय हासिल हो और रूस के लिए एक संविधान बने। रूस 1914 से पहला विश्व युद्ध में शामिल था।

दूसरी ओर रूस के अनपढ़ आम मज़दूर, किसान और सैनिक युद्ध से त्रस्त थे और वे शान्ति चाहते थे। वे बढ़ती महंगाई पर रोक लगाना चाहते थे और सभी को रोटी, कपड़ा, ठंड से बचने के लिए ईंधन और मकान माँग रहे थे। किसान जितनी जल्दी हो ज़मींदारों की ज़मीन का आपस में बँटवारा करना चाहते थे, इससे पहले कि ज़मींदार वापस आ जाएँ। सैनिक बहुत बुरे हालातों में युद्ध करते हुए थक गए थे और उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि वे किस के हित में लड़ रहे हैं। वे अपने सामन्ती अफसरों के अमानवीय व्यवहार से परेशान थे। कारखानों के मज़दूर काम की बिगड़ती हालातों से परेशान थे। उन्हें युद्ध के लिए अधिक से अधिक काम करने के लिए मजबूर किया जा रहा था। महिलाएँ पहले से कहीं अधिक परेशान थीं क्योंकि उनके घर के पुरुष सेना में भर्ती थे और घर चलाने के लिए उन्हें बहुत कम मज़दूरी पर कारखानों में काम करना पड़ रहा था। उन सबके लिए क्रांति अभी शुरू ही नहीं हुई थी।

मध्यम वर्गीय अस्थाई सरकार युद्ध विराम के प्रति ज़्यादा समर्पित नहीं थी। युद्ध से त्रस्त लोगों को राहत पहुँचाने की जगह युद्ध को विजयी अंजाम तक पहुँचाने के लिए तत्पर थी। न ही उसे ज़मींदारों के ज़मीन किसानों में बाँटने को लेकर कोई जल्दी थी। वे लोग संवैधानिक लोकतंत्र स्थापित करना चाहते थे मगर संविधान सभा के गठन कैसे हो, इसको लेकर कोई विचार नहीं था। कुल मिलाकर वे सत्ता को मध्यम वर्ग के हाथों में बनाए रखना चाहते थे और धीमी गति में थोड़े-थोड़े बदलाव लाना चाहते थे।

क्रांति संबन्धित पर्चे छपकर बंटने के लिए जा रहे हैं

मार्च से नवंबर के बीच आम लोगों और सैनिकों का धीरज और सहनशीलता कम होते गया। इसी बीच बोल्शेविक पार्टी और उसके नेता लेनिन इस बढ़ते गुस्से को दिशा देने लगे। उनका कहना था कि रूस का मध्यम वर्ग कमज़ोर है और वह सत्ता नहीं संभाल सकता है। रूस में आम लोग जिस तरह का लोकतंत्र चाहते हैं उसे वह स्थापित नहीं कर सकता है। नतीजा यह होगा कि युद्ध जारी रहेगा और लोगों की परेशानी बढ़ती जाएगी और अंततः ज़ार शाही वापस लौट आएगी। इसलिए लेनिन का आग्रह था कि मज़दूरों व सैनिकों के सोवियतों को सत्ता अपने हाथ में लेनी चाहिए। तुरन्त एक तरफा युद्ध विराम घोषित करना चाहिए और गाँवों में किसानों को यह अधिकार देना चाहिए कि वे समितियाँ बनाकर ज़मींदारों की ज़मीन आपस में बाँट लें। नवंबर की शुरुआत तक मज़दूरों व सैनिकों के सोवियतों में लेनिन के विचारों को लेकर सहमति बनने लगी थी। 6 नवंबर की रात राजधानी पेट्रोग्राद के मज़दूरों व सैनिकों के सोवियत ने राज महल पर कब्ज़ा कर लिया और अस्थाई सरकार के मंत्रियों को कैद कर लिया। अगले दिन 7 नवंबर 1917 की सुबह दस बजे पूरे रूस के मज़दूर और सैनिकों के सोवियतों का अधिवेशन शुरू हुआ। लेनिन ने वहाँ ऐतिहासिक ऐलान किया,

"साथियों अस्थाई सरकार को हटा दिया गया है और उसके अधिकांश मंत्रियों को गिरफ्तार कर लिया गया है...!

"जिस उद्देश्य के लिए लोगों ने संघर्ष किया था, तत्काल लोकतांत्रिक शान्ति की पेशकश, ज़मीनी संपत्ती का खात्मा, औद्योगिक उत्पादन पर मज़दूरों का नियंत्रण, सोवियतों की सत्ता की स्थापना- ये लक्ष्य अब सुनिश्चित हो गए हैं।

मज़दूरों, सैनिकों और किसानों की क्रांति ज़िन्दाबाद!"

इसके तुरन्त बाद नई सरकार का गठन हुआ और तीन घोषणाएँ की गईं। पहला, शांति घोषणा, दूसरा, सारी ज़मीन का राष्ट्रीकरण और ज़मींदारों के ज़मीन का किसानों में बँटवारा और तीसरा कारखानों में उत्पादन पर मज़दूरों का नियंत्रण। इसके साथ ही यह भी ऐलान हुआ कि पूरे देश में गाँव, मोहल्ले व शहरों में सत्ता अब वहाँ के मज़दूरों, किसानों व सैनिकों द्वारा चुनी गई सोवियतों को सौंपी जा रही है।

ये सब महज़ घोषणाएँ थीं, नई सरकार के मंत्री भी आए दिन घोषणाएँ करते रहे... मगर अमल कौन करे? सारे मंत्रालय के बाबू और अफसर पुरानी सरकार के समर्थन में हड़ताल पर चले गए, तिजोरियों की चाबी सहित। नई सरकार के पास न पैसे थे न लोग न ही तंत्र। सारे स्कूल कालेज बंद रहे क्योंकि सारे शिक्षक अन्य मध्यम वर्गीय लोगों की तरह पुरानी सरकार का समर्थन कर रहे थे। उनका मानना था कि बोल्शेविकों की यह सरकार अवैध है और जल्दी ही खतम हो जाएगी।

'क्रांति के दिन' 1917-18 में पेट्रोग्राद के एक स्कूली छात्र द्वारा बनाया गया चित्र

किसानों के बीच बोल्शेविक मज़दूर, ज़मीन के वितरण की तैयारी

एक तरफ मध्यम वर्ग का असहयोग था। दूसरी ओर यह सरकार केवल शहर के मज़दूरों व सैनिकों के बल पर टिकी थी। गाँव के किसान अब तक उनके पक्ष में नहीं हुए थे। किसानों की सोवियतें बनीं और उनका अधिवेशन हुआ, जिसमें बोल्शेविकों का अल्पमत था। लेनिन जब बोलने के लिए खड़े हुए तो उन्हें बोलने भी नहीं दिया गया।

अगले कुछ दिन किसान सोवियतों और सरकार के बीच बातचीत चलती रही और अन्त में ज़मीन वितरण और सत्ता में भागीदारी को लेकर कुछ सहमति बनी। अब सही मायने में वह सरकार किसानों, मज़दूरों और सैनिकों की सरकार बनी। लेकिन अब क्रांति का भविष्य इस बात पर निर्भर था कि वह गरीबों के प्रति अपने वादे को पूरा कर पाती कि नहीं। एक युद्धग्रस्त ठप्प अर्थ व्यवसथा, खाली खज़ाना और पुराने शासकों का घोर विरोध, इन सबको झेलते हुए यह सरकार क्या हासिल कर सकती थी? यह सवाल सबके सामने था।

इन घटनाओं को लेकर आज भी बहस जारी है। कई लोगों का मत है कि बोल्शेविक दल के लोग मज़दूरों व सैनिकों को भड़काकर उन्हें अपनी साजिश का शिकार बनाकर सत्ता हथिया रहे थे। बोल्शेविक पूरे देश में लोकतांत्रिक चुनाव करवाकर सत्ता में नहीं आ सकते थे क्योंकि देशभर के लोग अलग-अलग दलों को पसंद करते थे। इसलिए उन्होंने पेट्रोग्राद शहर को मज़दूरों व सैनिकों को अपने वश में करकर सत्ता हथिया लिया। यह वही नज़रिया है जो ऊपर के प्रसंग में हमने छात्र नेता के मुँह से सुना था। इसके विपरीत ऐसे लोग हैं जो मानते हैं कि सत्ता या तो पूँजीपतियों के हाथ होती या फिर मज़दूरों के हाथ। पूँजीपतियों ने स्थापित कर दिया था कि वे गरीबों की माँगों को लेकर गंभीर नहीं थे न ही वे रूस में लोकतंत्र की स्थापना को लेकर गंभीर थे। ऐसे में मज़दूरों को ही सत्ता संभालना था और यह इसी तरह संभव था। ऐसी ही कुछ बात शायद वह अनपढ़ सैनिक कहने की कोशिश कर रहा था।

यह केवल नज़रियों की बात नहीं थी। दोनों तरफ के बीच अगले पाँच साल जमकर गृह युद्ध हुआ, जिससे लोगों की ज़िंदगी और बिगड़ी। मगर अन्त में बोल्शेविक क्रांतिकारियों की जीत हुई। उसके बाद आर्थिक स्थिति में सुधार आने लगी।

जो भी हो लेनिन की तीन प्रारंभिक घोषणाएँ युगान्तकारी साबित हुईं। क्रांति के कुछ ही महीनों में जर्मनी के साथ शान्ति समझौता हुआ, गाँवों में किसानों की समितियों ने ज़मींदारों की ज़मीनें बाँट दी, और कारखानों में मज़दूरों के प्रतिनिधियों ने संचालन को अपने हाथों ले लिया। लेकिन ये सब बदलावों की शुरुआत ही थी। हर क्षेत्र में प्रयोग हुए और नए विचारों को आज़माया गया, ऐसे लग रहा था कि सोवियत रूस दुनिया की सबसे सृजनशील प्रयोगशाला है जहाँ एक नए युग का निर्माण होने लगा है।

मगर रूसी क्रान्ति की कहानी और बहुत बड़ी है और रोमांच के साथ बहुत गहरे दुख, अकाल, अभाव, खून-खराबा और युद्धों की कहानी है। बहुत ही विकट परिस्थितियों में वहाँ के मज़दूरों व किसानों ने अपने जीवन की पुनर्रचना की। लेकिन यह सब कभी बाद में।

तुम्हारे घर में कौन सबसे ज़्यादा स्वतंत्र है?

चकमक के अगस्त अंक में हमने आज़ादी के बारे में आप लोगों का लेख प्रकाशित किया था। उसके बाद भी हमें लगातार इस विषय पर लेख मिलते रहे हैं। इनमें से कई लेखों में बहुत नई बातें भी पढ़ने को मिली। तो इस अंक में हम ऐसे नए विचारों को आप के शब्दों में आपके साथ साझा कर रहे हैं।

आज़ादी का अर्थ है कि हम अपने मन-माफिक कुछ भी कार्य कर सकते हैं पर बिना किसी अन्य को नुकसान पहुचाएँ। आज हम एक आज़ाद देश में रह रहें हैं, हम आज़ाद हैं। तो क्या? इसका यह अर्थ हुआ कि हम किसी को भी चोट पहुँचाने के लिए भी स्वतंत्र हैं, कुछ गलत करने के लिए भी आज़ाद हैं? कदापि नहीं।.. मैं स्वयं को आज़ाद मानता हूँ परंतु फ़िर भी मुझे कुछ नियम मानने पड़ते है, कुछ बंदिशों के अधीन रहना पड़ता है। तब भी मैं खुद को आज़ाद मानता हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ कि ये मेरी भलाई के लिए है। मुझे मेरे आस-पास सभी मनुष्य आज़ाद प्रतीत होते है, जो अपनी मर्ज़ी से अपने कार्य करते हैं। फिर भी मुझे सबसे ज्यादा आज़ाद आसमान मे विचरण करते हुए पक्षी लगते हैं। उन्हें कोई रोक-टोक नहीं होती व वे जहाँ जाना चाहे, वहाँ जाने के लिए स्वतंत्र है।

-उत्कर्ष अग्रवाल, 9वीं, देवास, मध्य प्रदेश

मेरे हिसाब से हमारे परिवार मे हम सब स्वतंत्र है और हम इसलिए स्वतंत्र है क्योकी हमारे यहा लड़की लड़कों को समान मानते है। हमारे परिवार मे लड़को से ज्यादा प्यार लड़की को करते है। और लड़को से भी करते है लड़की भी लड़को की तरह काम कर सकते है और लड़की की तरह लड़का भी कर सकता है।

-जस्मीन, 9वीं, धमतरी, छत्तीसगढ़

मेरे हिसाब से परिवार में मेरे दादा को किसी की अनुमति की ज़रूरत नहीं पड़ती जहाँ जाना चाहे वहाँ जा सकता है जो करना चाहते हैं कर सकता है दूसरा सबसे छोटा सदस्य मयंक जो बात करने बैठने भी नहीं सीखा है अपने मन से सोना, खाना, रोना व उसके रोने पर अपने मन से उसे घुमाने व बाहर ले जाना जो अपनी स्वेछा से है।

- रीतू निषाद, 12वीं, शासकीय उ.मा. शाला, करेली बाड़ी, धमतरी, छत्तीसगढ़

आयुष गोयल, चौथी-एफ, दिल्ली पब्लिक स्कूल, पुणे

मेरे मायने मे केवल अंग्रेजो से स्वतन्त्र हो जाना ही आजादी नहीं था। आजादी तो उससे भी बड़ी शब्द है। आज के जमाने मे जिस प्रकार लोग अपनी अपनी बेटियो को घर के काम-काजों से हटा कर पढ़-लिखा रहे है, और उन्हें पंख लगा कर उड़ने दे रहे है अपनी मंजील पाने दे रहे है, यह एक आज़ादी है।

-मुस्कान कुमारी, 8वीं 'फ', दिल्ली पब्लिक स्कूल, पटना

करण, शहीद स्कूल, रायपुर, छत्तीसगढ़

1947 में हमारा देश अंग्रेजों से आज़ाद हुआ था। पर सही मायने में आज़ादी क्या है? इस पर चर्चा करना बहुत ज़रूरी है, क्योंकि आज भी इस स्वतंत्र भारत में बहुत सी जगह ऐसी हैं जहाँ, स्वतंत्र का कोई महत्व नहीं है। आज हम शहरों को गाँवों से ज़्यादा सक्षम समझते हैं। क्यों क्या आपने कभी इसके बारे में सोचा है? ऐसा ज्यादातर लड़कियों के साथ होता है कि उन्हें आज़ाद रहने का मतलब ही नहीं पता। ऐसी ही मेरी एक दोस्त है उसकी मम्मी उसे कहीं जाने नहीं देती। उसने कई बार यह बात मुझसे कही है। पर अफसोस मैं उसके लिए कुछ भी नहीं कर सकती। आज भी अगर लड़कियों को आज़ादी नहीं दी जाती है तो हमारा भारत स्वतंत्र नहीं है।

-हर्षिता कोशले, 7वीं, बी, केन्द्रीय विद्यालय, देवास, मध्य प्रदेश

माता पिता के छुट को कई लोग उन विश्वास को तोड़ कर गलत रास्ते वे चले जाते हैं और उन लोगों देनी ही नही चाहिए क्योकि गलत रास्ते पे चलाने के लिए नही देते हैं।

- लिकेश्वरी, धमतरी, छत्तीसगढ़

मेरे हिसाब से मेरे परिवार में सबसे ज्यादा स्वतंत्र मेरे मामी है क्योंकि मेरे मामी काम करती है उसके पैसे को खुद रखती है और मामा भी अपने कमाई का पैसा मामी को देती है घर का खर्चा खुद करती है और पुरा घर खुद चलाती है।

-कुमारी वेद निषाद, 8वीं, धमतरी, छत्तीसगढ़

हमारे घर में पापा, मम्मी और हम छः भाई-बहन हैं। और हमारे घर में हमारे पापा जी आजाद हैं और हम कैदी की तरह जीते हैं। अगर हम हमारी मन मरजी करते हैं, तो वो मार पीट करते हैं। और वो किसी से भी प्यार नहीं करते शिवा अपने से हर चिज़ में रोक टोक करते हैं। और वो खुद की मन मरजी करते हैं। उनका शोक है खाना पीना और लड़ाई झगड़ा करना और वो आजाद हैं कभी-कभी तो वो बिन बताए दो-दो दिन बाहर रहते हैं। कभी या कोई भी समते हैं तो कोई की भी नहीं सुनते हैं। हमारे घर में पापा जी आजाद हैं। धन्यवाद!

-रोशनी कोचले, 8वीं, सरोजिनी नायडू शासकीय कन्या स्कूल, भोपाल, मध्य प्रदेश

मैं तो आजाद हूँ। लेकिन मुझे ही बहुत डर लगता है। मैं रास्ते पर अकेली जा सकती हूँ, पर मैं कुत्ता से डरती हूँ। मैं मेरे नानाजी के यहाँ पर अकेली नही जा सकती हूँ। मुझे तो हर बात की ही आजादी है, पर मे ही डरती हूँ मेरे घर के पास एक दूकान पर मुझे तो वह पर भी जाने मे डर लगता है। मैं आजाद तो हूँ पर आजाद नही क्योकि मुझे डर लगता है। मुझे डर इस बात का लगता है कि रास्ते पर बेमतलब कुत्ते भौकते है। मेरे सामने बहुत सी टक्कर हुई है। इसलिए मुझे डर।

-तनिष्का पांचाल, 7वीं, होली लाइट अकादमी, देवास, मध्य प्रदेश

एक बार एक लड़की अपने दोस्तो के साथ खेल रही थी। तब एक लड़की बहुत काली थी तो उसका मन-पसंद नही खेलते थे। तो क्या वह अजाद नही थी? पर ऐसा नही था। कोई भी इनसान अपने मन से आजाद होता है। पर हमारे देश मे कई ऐसे लोग जो राजा के नीचे है। पर हमे अपने दोस्तो के साथ एसा नही करना चाहिए और बलकी कोई भी धर्म के लोगों से दोस्ती करनी चाहिए। और हमे काले-गोरे, धर्म को नही देखना चाहिए। और अंदतमय और आजाद जीवन जीना चाहिए। आजादी सिर्फ धर्म, करने वाले के पास ही नही बल्की सबके पास होती है। 15 अगस्त पर अपना देश आजाद हो था।

-सुरभि 6वीं, सेंट मेरिज़ कॉन्वेंट स्कूल, देवास, मध्य प्रदेश

मेरी नज़र में मेरी दोस्त है, जिसको आजादी नही है। उसकी मम्मी उसको बाहर खेलने की भी आजादी नही देती, पर कभी-कभी उसकी मम्मी भी हाँ कह देती है, पर कभी-कभी उसका भी कही जाने का मन नही होता, कभी-कभी मेरा भी नही होता, मेरी भी कभी-कभी ट्यूशन जाने का मन होता है, पर में भी नही जा सकती क्योंकी मेरी बड़ी मम्मी भी मुझे पढ़ा सकती है और बड़े पापा भी। मेरी दोस्त को भी किसी के घर जाने की भी आजादी नही है।उसकी छोटी बहन को भी, कही बाहर जाने की आजादी नही उसको कही जाना रहता है। तो वो मम्मी को ले जाती है, या फिर अपनी बहन को उसकी दीदी तो अकेले जा सकती है, क्योकि वह सबसे बड़ी है।

-श्रद्धा बावस्कर 5वीं, सेक्रेड हार्ट स्कूल, देवास, मध्य प्रदेश

हमारे घर में मेरी माँ ज्यादा स्वतंत्र है। ऐसा नही कि वो जब बाहर जाती है तब हम दोनो बहनो को नही बताती है बताती है। क्योकि माँ हमसे बड़ी है व पढ़ी-लिखी भी है। तो वह दुकान खेत बाजार इत्यादि जगह अकेले भी चली जाती है।

यदि मुझे स्वतंत्रता मिल जाये तो मैं अपनी रूठी हुई सहेली को मनाऊगी जो कि वह शासकीय कन्या माध्यमिक शाला मगलोड में पढ़ती है उसका नाम कु.____है।

-योगेश्वरी साहू, 8वीं, धमतरी, छत्तीसगढ़

हमारे हिसाब से हमारे घर में हमारी माँ ज्यादा स्वतंत्र है जैसे कि हमारी माँ अपने मन से सब्जी खरीदती है।

-वंदना भीम, 8वीं, शासकीय कन्या माध्यमिक शाला, मगरलोड, धमतरी, छत्तीसगढ़

मेरी दोस्त ने मुझे बताया कि मेरे दोस्त को छोटे कपड़े पहनने की आजादी नहीं है जब भी मेरे दोस्त छोटे कपड़े पहनती तो उसकी मम्मी या पापा उसे बोहोत डाटते और कहते कि बेटा छोटा कपड़ा नहीं पहनना चाहिए ज़माना बोहोत खराब है। .. उसके मम्मी पापा बड़े लंबे आकार के कपड़े पहनवाते। इसी चीज़ से उसे आज़ादी नहीं है...

भाग्यश्री भालसे, 7वीं, केन्द्रीय विद्यालय बी एन पी, देवास, मध्य प्रदेश

गांधी जी बाबा स्वतंत्र थे वो किसी भी काम को स्वयम करते थे वो किसी के उपर निर्भर नहीं रहते थे।

-धर्मेश्वरी, साहू, धमतरी, छत्तीसगढ़

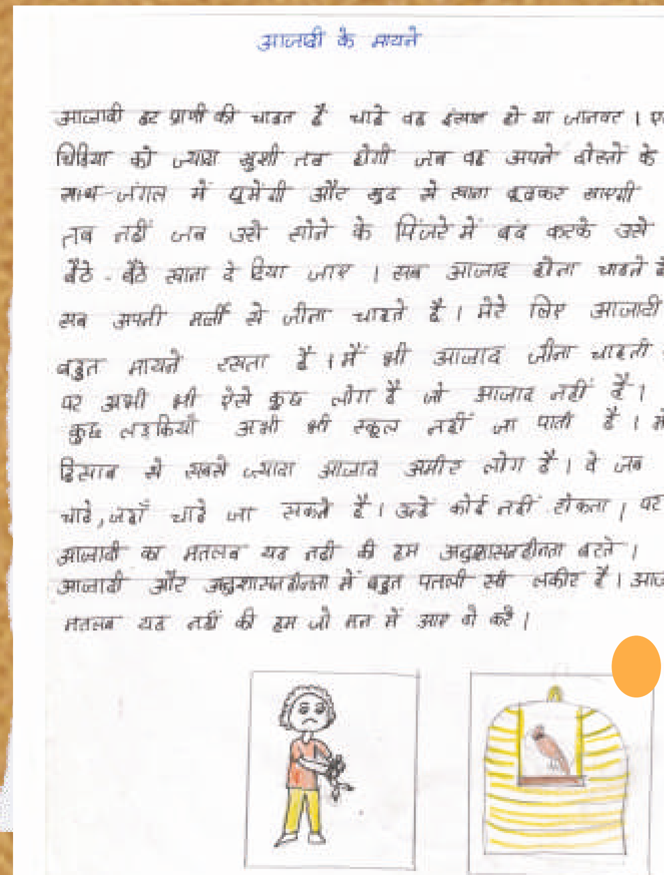

आजादी के मायने

आजादी हर प्राणी की चाहत है चाहे वह इंसान हो या जानवर। एक चिड़िया को ज्यादा खुशी तब होगी जब वह अपने दोस्तों के साथ जंगल में घूमेगी और खुद से खाना ढूंढकर खाएगी तब नहीं जब उसे सोने के पिंजरे में बंद करके उसे बैठे-बैठे खाना दे दिया जाए। सब आजाद होना चाहते हैं सब अपनी मर्जी से जीना चाहते हैं। मेरे लिए आजादी बहुत मायने रखता है। मैं भी आजाद जीना चाहती हूँ पर अभी भी ऐसे कुछ लोग हैं जो आजाद नहीं हैं। कुछ लड़कियाँ अभी भी स्कूल नहीं जा पाती हैं। मेरे हिसाब से सबसे ज्यादा आजाद अमीर लोग हैं। वे जब चाहे, जहाँ चाहे जा सकते हैं। उन्हें कोई नहीं टोकता। पर आजादी का मतलब यह नहीं की हम अनुशासनहीनता करें। आजादी और अनुशासनहीनता में बहुत पतली सी लकीर है। आज मतलब यह नहीं की हम जो मन में आए वो करें।

प्रज्ञा सिन्हा, छठवीं- ब, दिल्ली पब्लिक स्कूल, पटना

दुर्गेश्वरी साहू, शहीद स्कूल, रायपुर, छत्तीसगढ़

रूसी क्रांति और आवास

गरीबों का शहर!

आप अपने आसपास के किसी शहर या गाँव पर विचार करें। वहाँ सबसे अच्छी सड़क, घर, पीने के पानी, स्कूल व अस्पतालों की व्यवस्था, सफाई, बज़ार वगैरह-वगैरह का वितरण देखें। ये सब किन मोहल्लों में मिलते हैं? और किनमें नहीं? आपके जवाब में कोई संदेह की गुंजाईश नहीं है, ये अमीरों व मध्यम वर्ग के लोगों के मोहल्ले में ही होंगे। गरीबों और मज़दूरों के मोहल्लों में प्रायः सभी सुविधाएँ कमतर या अनुपस्थित होंगी। उनकी ज़्यादातर बस्तियाँ 'अवैध' होंगी, जहाँ किसी तरह की सुविधा होगी ही नहीं।

प्रशासन ऐसे चलता है जैसे कि अमीरों व ताकतवरों की हितों की रक्षा सबसे पहले हो और बाकी की बाद में। अगर खुदा न खास्ता उल्टा हो जाए तो क्या होगा? अगर हर चीज़ में, सभी सुविधा प्रबंध में, सबसे गरीब को सबसे पहले प्राथमिकता दी जाए तो क्या होगा? सड़कें कैसी होंगी, नल कहाँ लगेंगे, कहाँ अच्छी शालाएँ बनेंगी...या फिर अच्छे स्कूलों में किसको दाखिला मिलेगा...? अगर किसी शहर में अमीरों के पास आलीशान महल हो और गरीबों के पास रहने के लिए ठीक घर भी न हो तो....? नवंबर, 1917 के बाद रूस के हर शहर और गाँव में इन समस्याओं को लेकर लोग जूझने लगे। अब जब सत्ता गरीबों के हाथ में आई, वे इसका क्या उपयोग करेंगे? गरीबों ने इस सत्ता का भरपूर उपयोग किया और जो उपयोग उन्होंने किया, उसे इतिहास कभी भुला नहीं सकता। कुछ उदाहरण यहाँ हम दे रहे हैं..। आगे आप अंदाज़ा खुद लगा सकते हैं...।

महलों में बेघर!

1917 से पहले पेट्रोग्राद शहर का एक हिस्सा अमीरों का था जहाँ आलीशान महल और बंगले थे, जिनमें गिने चुने लोग रहते थे। दूसरी तरफ कारखानों और मज़दूरों की बस्तियाँ थीं, जहाँ झुग्गियों व छोटे घरों में बहुत सारे लोग रहते थे। गाँवों के गरीब आए दिन शहर की ओर काम की तलाश में आ रहे थे और उनके रहने के लिए घर भी नहीं थे। एक कमरे में बहुत से लोग रहते थे, वह भी बारी-बारी से। कोई सुबह सोता था तो कोई काम करके रात में। जिनके परिवार साथ में थे उन्हें और भी अधिक समस्या थी।

क्रांति के बाद सारे शहरी ज़मीन और घरों का राष्ट्रीयकरण किया गया। बड़े महलों को सार्वजनिक दफ्तर या संग्रहालय बनाया गया ताकि सारे लोग उनका उपयोग कर सकें। अमीरों (सामन्त, पूँजीपति, मध्यम वर्ग) के निजी घरों व बंगलों के बारे में यह नियम बना कि पुराने निवासियों के लिए प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक कमरा होगा तथा बाकी कमरे उनके सामान सहित बेघर व बेरोज़गार लोगों और सैनिकों के लिए उपलब्ध होगा। गरीब शहरवासियों की समितियाँ बनीं जो घर-घर जाकर स्थिति का जायज़ा लेकर कमरे आवंटित करती थीं। ज़ाहिर है कि अमीरों और मध्यम वर्ग के लोगों को यह व्यवस्था बिल्कुल पसंद नहीं आई और वे अपनी संपत्ती की रक्षा की दुहाई देते रह गए। अपने भव्य बंगलों में शहर के फटेहाल गरीबों के साथ रहना और उनके साथ बराबरी से घर की साफ-सफाई आदि में भाग लेना व उनकी विभिन्न जीवन शैलियों को सहन करना उनके लिए कठिन था।

अमीरों में बहुत से लोग ऐसे भी थे जो परिवार सहित शहर छोड़ गए और दूसरे देशों में जाकर रहने लगे। ऐसे घरों को मज़दूरों का सामूहिक निवास स्थान बनाया गया, जहाँ कई मज़दूर परिवार एक साथ रहते थे, एक साथ बच्चों की देखभाल करते थे और एक रसोई में बना खाना भी खाते थे। इनका संचालन 'घर समितियाँ' करती थीं, जिन्हें घर के सारे लोग मिलकर चलाया करते थे।

वी स्मिरनोव का चित्र - नई बस्ती

क्रांति के दो साल के अन्दर कई बड़े होटलों को मज़दूरों के लिए छुट्टी बिताने व आराम करने के लिए खोल दिया गया। विभिन्न कारखानों के मज़दूर संगठन बारी-बारी से मजदूरों को वहाँ भेजते थे।

ज़ाहिर है कि ये सब अस्थाई व्यवस्थाएँ थीं, जो केवल तुरन्त के समस्याओं का हल था। वे दिन भी कठिन थे, संसाधन नहीं था, नए घर या कालोनियाँ बन नहीं पा रही थीं न ही पुराने घरों की मरम्मत। घरों को गरम रखने के लिए ईंधन नहीं था, तो अक्सर इमारतों में लगी लकड़ियों को ही जलाना पड़ता था, लेकिन इन सबके बीच एक नए शहर जिस पर रईसों का वर्चस्व नहीं हो और जो मेहनत करने वालों व मज़दूरों ज़रूरतों को प्राथमिकता दें, की कल्पना और योजना शुरू हो गई। मज़दूरों की विशाल बस्तियाँ, जो रोशनीदार हों और जहाँ हरियाली, पानी, बिजली और साफ सफाई की समुचित व्यवस्था हो, जहाँ एक साथ रहने के लिए सामूहिक व्यवस्थाएँ हों (जैसे छोटे बच्चों की देख-भाल के लिए क्रेश, सामूहिक रसोई, सामूहिक कपड़े धोने की लांड्री आदि)। ऐसी बस्तियों की कल्पना के लिए आर्किटेक्ट को कहा गया। महिलाओं को रोज़ाना के कठिन परिश्रम से बचाना और उन्हें दूसरे काम और व्यवसाय के लिए समय निकालने के लिए मौके देना इनका उद्देश्य था। इनके साथ-साथ मज़दूर महलों की कल्पना की गई, जहाँ मज़दूर खेल-कूद, पुस्तकालय, संगीत, नृत्य, नाटक, फिल्म आदि का मज़ा ले सकें। इनमें से अधिकांश योजनाएँ दस साल बाद ही ज़मीन पर उतर पाईं। क्योंकि क्रांति के पाँच साल बाद का समय गृह युद्ध, अकाल और अभाव का समय था। 1924 के बाद ही शांति स्थापित हो पाई और 1927 के बाद ही औद्योगिक विकास ज़ोर पकड़ने लगा, जिससे इनके लिए ज़रूरी साधन उपलब्ध होने लगे।

बौद्ध परम्परा के अनुसार महात्मा बुद्ध ने इस जन्म से पहले अनेक बार और अनेक रूप में जन्म लिया था। इन जन्मों में उन्हें 'बोधिसत्त' कहा जाता था। प्राचीन बौद्ध संकलन (जातक-अथ्थ वण्णना) जिन्हें आमतौर पर जातक कथाएँ कहते हैं, में उनके इन जन्मों की रोचक बातें हैं।

इस कॉलम में हम ऐसी ही पुरानी कहानियाँ पेश करते हैं...

कौन बड़ा, कौन छोटा?

कुमकुम रॉय

महात्मा बुद्ध ने अपने समर्थकों के लिए, जिन्होंने सन्यास अपनाया था, संघ नामक एक संस्था की स्थापना की। संघ में शामिल होने वालों को 'भिक्षु' कहा जाता था। वे बस्तियों में घूमकर लोगों से बातचीत कर, उन्हें शिक्षा देते और अपने खाने के लिए भिक्षा मांगते थे। संघ में एक साथ रहने के लिए कई विषयों पर विचार करना ज़रूरी था। कौन कहाँ रहेगा? क्या खाएगा? किन्हें पहले और किनको बाद में खाना चाहिए और क्यों? कैसे तय करें कौन बड़ा और कौन छोटा? क्या लोग धन दौलत से बड़े होते हैं या जाति से? या फ़िर शारीरिक शक्ति से, या ज्ञान से? आगे पढ़िए और सोचिए। इस कहानी में इस सवाल का जवाब मिलेगा। क्या आप इससे सहमत हैं?

इस कहानी में बुद्ध ने तीतर के रूप में जन्म लिया था।

बहुत समय पहले की बात है। एक विशाल बड़ के पेड़ के पास तीन दोस्त : तीतर, बन्दर और एक हाथी रहते थे। लेकिन उनमें कौन बड़ा और कौन छोटा था, यह निश्चित नहीं था । एक दिन उन्होंने सोचा की यह तय करना ज़रूरी है और इसके लिए उन्होंने एक तरीका निकाला।

बड़ के पेड़ के नीचे बैठकर तीनों आपस में बातचीत करने लगे। तीतर और बन्दर ने हाथी से पूछा "भाई हाथी! तुम जब पहले यहां आए थे तब याद है, यह पेड़ कितना बड़ा था?"

हाथी ने जवाब दिया, "जब मैं छोटा था, यह पेड़ भी बहुत ही छोटा था। यहां तक कि मैं इसके ऊपर से चलता था। तब मेरे पेट के नीचे, नाभि के पास इनके पत्तों से मुझे गुद्गुदी महसूस होती थी।"

इसके बाद हाथी और तीतर ने बन्दर से पूछा, "तुम्हारे बचपन में यह पेड़ कितना बड़ा था? कुछ याद है?"

बन्दर ने कहा, "मैं बचपन में ज़मीन पर बैठकर गर्दन ऊंचे करके इसके ताज़े और नए पत्ते खाता था।"

इसके बाद बन्दर और हाथी ने तीतर से वही सवाल पूछा। तीतर ने जवाब दिया : "पहले एक दुसरे जगह पर एक बड़ का पेड़ था, वहां से फल खाकर मैंने यहां बीज बीट के साथ छोड़ा था। उसी बीज से इस पेड़ का जनम हुआ। इसलिए यह कहना शायद गलत नहीं होगा कि मैं इसे इसके जनम के पहले से ही इसको जानता हूँ। इस तरह उम्र के हिसाब से मैं तुम दोनों से बड़ा हूँ।"

चित्र : शुभम लखेरा

तब बन्दर और हाथी ने माना "आप हम दोनों से बड़े हैं। अब से हम आपको वरिष्ठ मान कर आपके प्रति सम्मान प्रदर्शन करेंगे, आपसे सुझाव लेंगे और अगर आपको लगे कि हमें कुछ उपदेश की आवश्यकता हो तो ज़रूर दीजिएगा।"

उसके बाद तीतर ने उन्हें पञ्चशील सिखाया और खुद भी उसी शिक्षा के अनुसार चलने का प्रयास किया। तीनों ही एक दूसरे का सम्मान करने लगे और बाकी ज़िन्दगी इसी तरह खुशी से बिताया।

बच्चों के लिए 1917-18 में खोले गए भोजनालय

रूसी क्रांति और बच्चे

क्रान्ति तो बड़ों का काम है पर इसका प्रभाव बच्चों पर अधिक पड़ता है। रूसी क्रान्ति का शुरूआती वर्ष वहाँ के बच्चों के लिए बहुत कठिन रहा। युद्ध और क्रान्ति के कारण सामाजिक जीवन अस्त-व्यस्थ हो गया था। पारिवारिक जीवन को प्रभावित करने वाला एक कदम स्वयं क्रान्तिकारी सरकार ने उठाया था। रूस के इतिहास में पहली बार महिलाओं और पुरुषों को शादी का बंधन तोड़ने (तलाक लेने) की आज़ादी दी गई। हज़ारों पति-पत्नि जो बेमन साथ रह रहे थे, अपने सम्बन्ध तोड़कर नई ज़िन्दगी जीने लगे। मगर सवाल यह था कि उनके बच्चों का क्या होगा? युद्ध, क्रान्ति और तलाक के कारण हज़ारों की संख्या में बच्चे बेघर होकर सड़कों पर घूमने लगे। इन बच्चों के लिए चोरी, डकैती, जैसी हरकतें आम थीं। एक ओर भूख और ठंड़ तो दूसरी ओर आवारा ज़िन्दगी। पुलिस विभाग का प्रमुख काम था, अनाथ बच्चों को शैक्षिक परिसरों में बसाना और उन्हें काम, भोजन तथा शिक्षा देना। सोवियत रूस के कुछ महान शिक्षाविदों को इस काम में लगाया गया। उनमें से एंटोन मकारेंको ने अपने इस अनुभव को विस्तार से *'जीवन की राह पर'* नामक पुस्तक में लिखा भी है।

जो बच्चे घरों में पल रहे थे उनके लिए भी ज़िंदगी आसान न थी। खाने के लाले पड़े थे, कपड़े आदि तो बहुत दूर की बात थी। इसमें अक्सर किसी न किसी माता-पिता को काम से युद्ध के लिए दूर जाना पड़ता था। तब इन बच्चों के देखभाल के लिए घर पर कोई नहीं होता था, लेकिन इसमें आशा की बात यह थी कि नई सोवियत सरकार बच्चों को लेकर बहुत चिन्तित थी और उसकी नीति में बच्चों को राहत पहुँचाने को सबसे अधिक प्राथमिकता दी गई थी। क्रान्ति का आदर्श यही था कि सबसे कमज़ोर को सबसे अधिक राहत दिलाना। बच्चों के लिए सबसे ज़्यादा राशन होता और सबसे पहले आवंटित होता था। जगह-जगह बच्चों के लिए भोजनालय खोले गए, जहाँ उन्हें मुफ्त भोजन दिया जाता था। स्कूलो में भी भोजन देने की व्यवस्था की गई।

बच्चों के परवरिश का बोझ अक्सर महिलाओं पर ही आता है। इसलिए नई कालोनियों और कारखानों में बच्चों की देखभाल के लिए सामुदायिक व्यवस्थाएँ की गईं। जैसे सामूहिक किचन, कपड़े धोने के सामूहिक लांड्री, बच्चों को खेलने, खाने-पीने तथा प्रारंभिक शिक्षा आदि। इससे महिलाओं पर घरेलू काम का भार कुछ कम हुआ।

उन दिनों कई लोगों का मानना था कि आम अभिभावक पिछड़े विचारों के होते हैं और बच्चों को उनके विचारों से प्रभावित होने नहीं देना चाहिए। इसलिए बच्चों की परवरिश नए शासन द्वारा संचालित सामूहिक घरों में होनी चाहिए। इससे कई अभिभावक बहुत परेशान हुए और अपने बच्चों को सामुदायिक घरों में भेजने से डरने लगे, लेकिन धीरे-धीरे सभी लोगों में यह समझ बनी कि अभिभावकों का बच्चों पर अधिकार बना रहेगा मगर उनकी मदद के लिए सामुदायिक संस्थाएँ होंगी।

क्रान्ति का सबसे बड़ा प्रभाव तो स्कूलों पर पड़ा। क्रान्ति से पहले गरीब लोगों के लिए कोई व्यवस्थित स्कूल नहीं थे, स्कूल तो मध्यम वर्ग और सामन्ती ज़मींदारों के लिए था। वहाँ कोई मध्यम वर्गीय बच्चा भी उच्च शिक्षा नहीं पा सकता था। मज़दूरों के लिए केवल तकनीकी प्रशिक्षण मिलता था जो आमतौर पर कारखानों द्वारा संचालित था। क्रान्तिकारी सरकार के पहले कदमों में से एक था, सार्वजनिक और एकीकृत स्कूली व्यवस्था बनाना। पहली बार देश के सारे बच्चे बिना किसी फीस के एक साथ एक ही स्कूल में पढ़ सकते थे और बिना किसी भेदभाव के उच्च शिक्षा पा सकते थे।

मगर स्कूल के ज़्यादातर अध्यापक मध्यम वर्ग के थे और उन्होंने नई सरकार के आदेश मानने से इनकार कर दिया और हड़ताल पर चले गए। स्कूलों के सामान्य होने में कई महीने लग गए मगर इस बीच स्कूल का महौल बिलकुल बदल गया।

स्कूलों व उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश के लिए मज़दूरों, सैनिकों व किसानों के बच्चों को प्राथमिकता दी जाने लगी। पहले जहाँ सम्पन्न परिवार के ही बच्चे पढ़ते थे वहाँ गरीब बच्चों का बहुमत बना। अक्सर अमीरों व मध्यम वर्गीय लोगों के बच्चों को दूसरे बच्चों की प्रताड़ना सहनी पड़ी। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि उन्हें स्कूलों से बाहर कर दिया जाता था। यह उल्टा भेदभाव कई बार उग्र रूप ले लेता था, यह क्रान्ति के दस साल बाद ही थमा।

स्कूल के संचालन में माता-पिता, शिक्षक, सफाई कर्मचारी, हेडमास्टर और छात्रों के प्रतिनिधि शामिल हुए। स्कूल में क्या पढ़ाना है से लेकर उसका रख-रखाव कैसे हो तक, सभी बातें इन समितियों में होती थीं। अब प्राधान पाठकों व शिक्षकों का एकाधिकार नहीं चल सकता था। बच्चों ने बड़ों के तर्ज़ पर छात्र सोवियतों का गठन किया। उनमें पुरज़ोर बहस होता था कि हमें किस तरह की शिक्षा चाहिए, स्कूल का कामकाज कैसे चलना चाहिए? आदि।

शिक्षा विभाग में वे दिन मौलिक प्रयोगों के दिन थे। यह ऐलान हुआ कि शिक्षणकार्य भाषा, गणित, विज्ञान, इतिहास जैसे विषयों में बंटा नहीं होगा मगर बच्चे विभिन्न परियोजनाओं को करते हुए सारे विषय एक साथ सीखेंगे। जैसे मोहल्ले की सफाई करते हुए बच्चे समाज, स्वास्थ्य, भूगोल गणित आदि सीखेंगे या फिर बगीचे की देख-भाल करते हुए ये सब सीखेंगे...। परीक्षाएँ, बच्चों को श्रेणियों में बाँटना और रटने की प्रथा पर रोक लगाई गई। बच्चे बिना

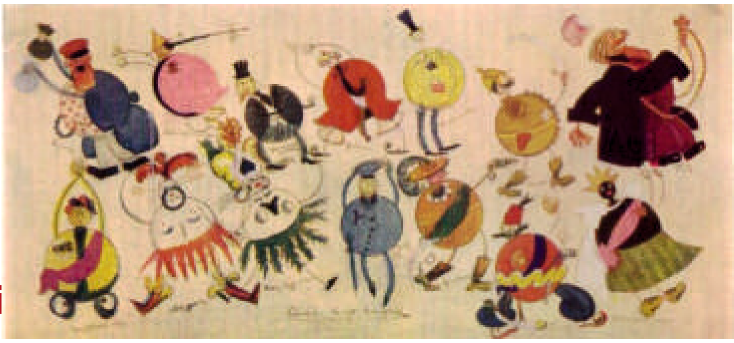

प्रसिद्ध कवि वी मायाकोव्सकी के दो चित्र

रटे, बिना परीक्षा के डर के अपने पसन्द से परियोजनाओं के माध्यम से सीखेंगे। स्कूल के काम में सामुदायिक कार्य बहुत महत्व रखता था क्योंकि सभी लोग मानते थे कि पुराना स्कूल लोगों के जीवन से कटा था। शिक्षण का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष था उत्पादन। समाजवादी विचारक यह मानते थे कि शिक्षा केवल कागज़ी नहीं होना चाहिए मगर बच्चों को उत्पादक काम करते हुए सीखना चाहिए। इससे वे श्रम की गरिमा समझेंगे, कार्य कुशलता बढ़ा पाएँगे और विषयों का ज्ञान सही सन्दर्भों मे समझ पाएँगे। शहरों के स्कूलों को कारखानों से जोड़ा गया, जहाँ मज़दूर बच्चों को औद्योगिक उत्पादन सिखाते थे या फिर खेतों में या बगीचों में किसानों व मालियों से सीखते थे। उन्हीं दिनों बहुत बड़े पैमाने पर वयस्कों में साक्षरता लाने के प्रयास चल रहे थे।

रूसी साक्षरता कार्यक्रम का एक पोस्टर

मौगली और परिवार - एक नृत्य नाटिका से

स्कूल के बच्चों को इस काम में लगाया गया कि वे अपने मोहल्ले, आस-पास के गाँव और कारखानों में जाकर बड़ों को पढ़ना लिखना सिखाएँ। माना गया कि यह उनके शिक्षा का एक हिस्सा है।

एक ओर स्कूली शिक्षा में बुनियादी बदलाव हो रहे थे तो दूसरी ओर स्कूल के बाहर सीखने के लिए नए मौके बनाए जा रहे थे। पहली बार बच्चों के लिए विशिष्ठ थियेटर खोले गए, जहाँ बच्चों के लिए नाटक, नृत्य आदि दिखाए जाते थे। इनमें देश के बेहतरीन कलाकार काम करते थे। फटेहाल गरीब मज़दूर और किसानों के बच्चों को देश के सबसे उत्कृष्ठ थियेटरों में जाकर नाटक और नृत्य देखने के मौके मिले। समस्या यह थी कि किसी को पता नहीं था कि इन बच्चों को क्या अच्छा लगेगा। तो कलाकार स्कूलो में जा-जाकर बच्चों से बात करके पता लगाते थे कि उन्हें क्या पसंद है। इन खोजों से पता चला कि बच्चों को जानवरों की कहानियाँ और कठपुतली बहुत पसन्द है। सो सबसे पहले दिखाये गए नाटक व नृत्य भारतीय बच्चों पर लिखी गई ‘जंगल बुक’ पर आधारित थी जिसमें मौगली और

मौगली का दुशमन - शेर खान

जिस दिन मेरी आखरी परीक्षा समाप्त हुई, उसी दिन पेट्रोग्राद के राजमहल पर कब्ज़ा हुआ था। मास्को में हमारे थियेटर में भी दो धड़ हुए। मैं क्रान्ति से बहुत प्रभावित हुई और खुद को इस नए जीवन निर्माण में समर्पित करना चाहती थी।....

मैं 1918 में ओरेल शहर के थियेटर में निर्देशन करने पहुँची, लेकिन हुआ कुछ और। ओरेल की सड़कों, बाज़ारों, तहखानों, उजड़े घरों, कब्रिस्तानों आदि में मैंने आवारा बच्चों का जमघट देखा। बिना नहाये धोए बच्चे, चिथड़ों में सज़े बच्चे, लंबे पतलूनों को रस्सी से बांधकर पहने हुए थे और हर चीज़ पर पत्थर या लकड़ी से वार करते थे। वे हमेशा समूहों में रहते थे, जिनके नेता होते थे और चोरी, डकैती एवं मारपीट करते रहते थे। सोवियत सरकार उन्हें बाल गृहों में या कारखानों में ठहराने का प्रयास करती थी मगर वे हमेशा भाग जाते। बालघरों व बाहर दोनों जगह बच्चे मुझे बच्चे नहीं लगते थे। वे किन्हीं कारणों से अपने उम्र से कहीं अधिक उम्र वाले वयस्क दिखते थे। थके हुए, आँखों में दुख और उन्हें किसी चीज़ में दिलचस्पी नहीं होती थी। बचपन के बगैर बच्चे... मैं ऐसे में उदासीन कैसे रह सकती थी? मुझे उनके लिए कुछ तो करना ही था। उनकी मायूसी को खतम करने के लिए एक मकसद की ज़रूरत थी, जिसे पकड़कर वे अपने भय से आहत क्षमताओं को उभार सकते थे। मैं थियेटर में ऐसी ऊर्जा भरना चाहती थी।

मुझे एक रईस के घर में एक कमरा मिला हुआ था, जो मुझे लगा कि बच्चों के थियेटर के लिए बहुत उपयुक्त है। मैंने शिक्षा विभाग के प्रमुख से कई दिन बिनती करके तीन-चार कमरों को मिलाकर एक हॉल बनाया।

उसके जानवर परिवार के किस्से थे।

यह काम बढ़ते-बढ़ते संस्थागत रूप लिया – विश्व का पहला बाल थियेटर क्रान्ति के पहले सालगिरह पर मास्को में खुला। इसमें संगीत, नृत्य, नाटक और साहित्य का समावेश था। यह बच्चों के बीच काफी सफल हुआ। इस थियेटर का उद्देश्य केवल मनोरंजन ही नहीं बल्कि शिक्षा भी थी। उनका मानना था कि नए समाज के निर्माण के लिए सुसंस्कृत और कला को समझने वाले मज़दूरों व किसानों की ज़रूरत है।

इसी तर्ज़ पर एक ज्यादा चुनौतीभरा काम था सड़क के बेघर बच्चों को थियेटर के दायरे में लाना। प्रसिद्ध बाल थियेटर कलाकार अस्जा लासीस से उनके अनुभव सुनते हैं।

बेघर बच्चे

हमारी उम्मीद थी कि पचास बच्चे आएँगे, लेकिन आए सौ।

मुझे अंदाज़ा नहीं था कि इन बच्चों में थियेटर से कैसे ऊर्जा भरी जा सकती है। मैं उन्हें एक तैयार नाटक दे सकती थी, जिसके किरदार, डायलॉग, सेट आदि तय थे। लेकिन यह उनके उत्साह बनाने के लिए काफी नहीं था...। ऐसे में वे हमेशा निर्देशक की तरफ ताकते रह जाते। ...मैं चाहती थी कि इस काम से वे बेहतर देखें, सुनें और अपने हाथों से कुछ बनाएँ। इसके लिए मैंने काम को कई हिस्सों में बाँटा। चित्रकला, संगीत, डायलॉग बोलना, सेट के लिए चीज़ें बनाना, ये सब सीखना ही हमारा लक्ष्य बन गया।

हमारी कार्यशाला में बालघर के बच्चे तो आये मगर, सड़क के आवारा बच्चे नहीं। मैंने जब उनके बीच जाकर उन्हें आमंत्रित करने की कोशिश की तो उन्होंने मुझे गलियाँ दी, मेरा मज़ाक उड़या और पत्थर मारकर भगा दिया, लेकिन मैं जाती रही, उनसे बहस करती रही। ऐसा भी हुआ कि जब मैं बहुत दिन बाद गई तो वे मुझे घेर कर बातें करने लगते फिर नाटक तैयार होने लगा। एक दिन नाटक

नाटक की घोषणा करते हुए बच्चों का जुलूस 1918

में कुछ चोरों के आपसी बातचीत का रिहर्सल चल रहा था। चोरों को एक दूसरे से अपनी शेखी बगारनी थी। तब अचानक उन आवारा बच्चों की टोली आ पहुँची। मेरे पात्र डरे सहमे हुए अभिनय कर रहे थे तो उन आवारा बच्चों के नेता ने उन्हें धकेल दिया और खुद चोरों का किरदार ज़बरदस्त तरीके से अदा करने लगे। चोरी, डकैती, हत्या, मारकाट.. सबका हूबहू अभिनय किया और फिर कहा, 'चोर ऐसे होते हैं...।' कायदे से मुझे उन्हें रोककर बाहर निकालना था लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया। नतीज़ा यह हुआ कि वे अगले दिन से हमारी मंडली में शामिल हो गए।

बकरा सच्चा प्यार करता है

हमारे पास एक बकरा था। वह हमसे बहुत प्यार करता था। हम कहीं भी जाते थे वह हमारे साथ जाता था। एक दिन एक आदमी हमारे घर बकरा खरीदने आया था। हम घर पर नहीं थे। वह फिर से खरीदने आया था। हमारा बकरा उस आदमी को मारने लगा। जब हमारा बकरा बिक गया तो हम रोने लगे थे।

– फरीन, चौथी, रा. प्रा. विद्यालय सितारगंज, उत्तराखण्ड

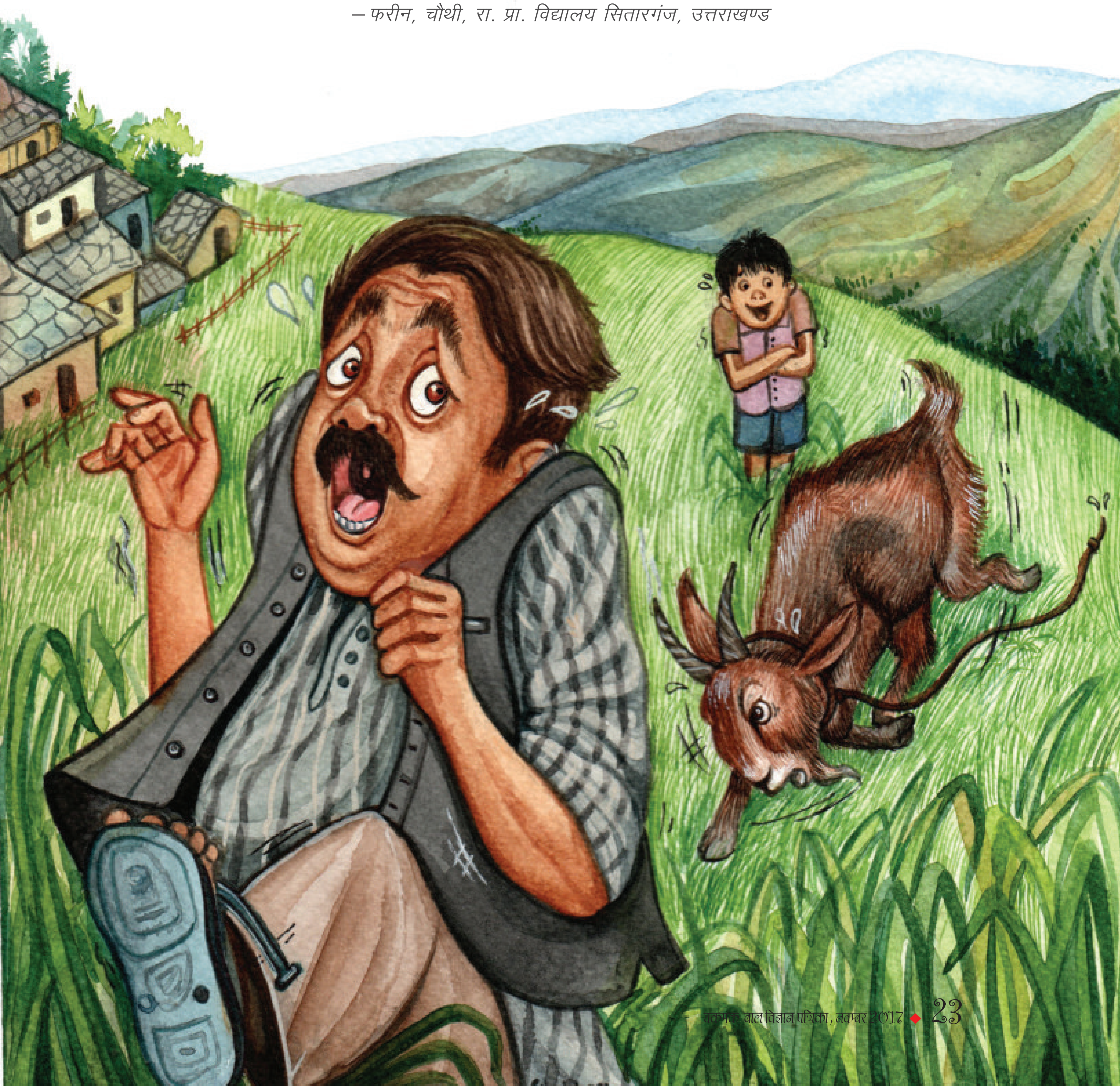

विज्ञापन

Education for Social Change

Azim Premji University

UNDERGRADUATE PROGRAMMES

- Bachelor of Arts (Economics | Humanities)
- Bachelor of Science (Biology | Physics)

POSTGRADUATE PROGRAMMES

- Master of Arts in Education
- Master of Arts in Development
- Master of Arts in Public Policy & Governance
- Master of Laws (Law & Development)

highlights

- Learning beyond the classroom
- A rich blend of theory and practice
- Faculty experienced in teaching and research
- Vibrant student life
- 50 - 100 % scholarships based on family income

apply now

Admissions Open

Azim Premji University
PES Campus, Hosur Road
Electronics City
Bengaluru - 560100

www.azimpremjiuniversity.edu.in
Call: 1800 843 2001

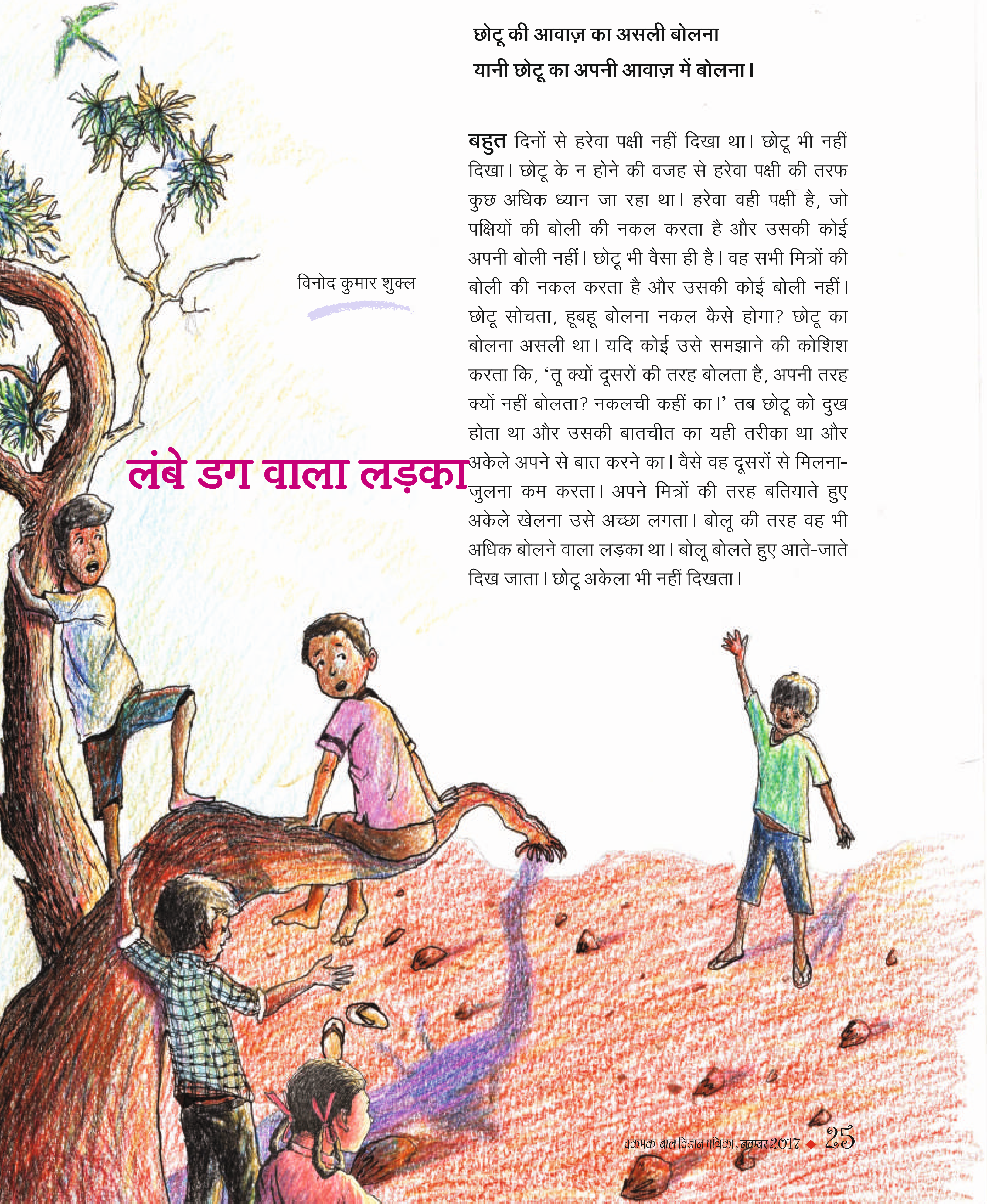

लंबे डग वाला लड़का

विनोद कुमार शुक्ल

छोटू की आवाज़ का असली बोलना
यानी छोटू का अपनी आवाज़ में बोलना।

बहुत दिनों से हरेवा पक्षी नहीं दिखा था। छोटू भी नहीं दिखा। छोटू के न होने की वजह से हरेवा पक्षी की तरफ कुछ अधिक ध्यान जा रहा था। हरेवा वही पक्षी है, जो पक्षियों की बोली की नकल करता है और उसकी कोई अपनी बोली नहीं। छोटू भी वैसा ही है। वह सभी मित्रों की बोली की नकल करता है और उसकी कोई बोली नहीं। छोटू सोचता, हूबहू बोलना नकल कैसे होगा? छोटू का बोलना असली था। यदि कोई उसे समझाने की कोशिश करता कि, 'तू क्यों दूसरों की तरह बोलता है, अपनी तरह क्यों नहीं बोलता? नकलची कहीं का।' तब छोटू को दुख होता था और उसकी बातचीत का यही तरीका था और अकेले अपने से बात करने का। वैसे वह दूसरों से मिलना-जुलना कम करता। अपने मित्रों की तरह बतियाते हुए अकेले खेलना उसे अच्छा लगता। बोलू की तरह वह भी अधिक बोलने वाला लड़का था। बोलू बोलते हुए आते-जाते दिख जाता। छोटू अकेला भी नहीं दिखता।

आजकल वह किसी नए साथी की तरह बोल रहा था और ऐसा बोलने वाले साथी का पता नहीं था। तब एक नए साथी की तरह उसका बोलना क्या यह उसका अपना बोलना हो सकता था? यह अनुमान था। यह अनुमान इसलिए था कि ऐसा बोलने वाला सचमुच कोई साथी नहीं था पर शक हो जाता कि लोगों की बोलने की भीड़ में उसे सुना। उसे जाना नहीं। उसे देखा भी नहीं पर उसके जैसा बोलना जान गया। अपने मिलने-जुलने में वह न मालूम कितने लोगों से मिलता है पर छोटू उन सब के बोलने की नकल नहीं करता। इस तरह एक नया बोलना उसके अकेले का मित्र हो गया। हो सकता है कि यह बाद में पता चले कि उसका यह नया बोलना छोटू की आवाज़ का असली बोलना है।

तो बहुत दिनों से हरेवा पक्षी नहीं दिखा। चिड़ियों की चहचहाहट तो थी। परिचित, अपरिचित बोलने वाले पक्षी के ऊपर नज़र पड़ जाती। यह उम्मीद तो रहती थी कि हरेवा पक्षी भी हो। किसी ने और देखू ने भी बहुत दिनों से छोटू और हरेवा पक्षी को नहीं देखा था।

एक दिन देखू से बोलू ने पूछा, "छोटू दिखाई नहीं देता, गाँव छोड़कर तो नहीं चला गया?"

देखू ने कहा, "देखो, मैं पिछले दस दिनों को एक-एक कर पलटा-पलटाकर देख सकता हूँ कि क्या-क्या देखा। और मैंने कई बार पलटा लिया कि पिछले दस दिनों से मैंने उसे नहीं देखा।"

बोलू ने कहा, "कभी अपने किसी मित्र की आवाज़ सुनता हूँ, तो लगता है कि छोटू तो नहीं बोल रहा!" पर वे सुबोध, प्रेमू, चंदू, भैरा या कूना निकल आते हैं, छोटू नहीं निकलता।

"लो! मैं आ गया।" किसी नये लड़के की आवाज़ थी, जिसे पहले नहीं सुना गया था।

"कौन आ गया?" आश्चर्य से बोलू और देखू, आवाज़ की तरफ मुड़े।

"अरे! छोटू तुम हो।"- देखू ने मुँह फाड़कर कहा और क्षण भर मुँह खुला रहा।

बोलू कुछ देर बोल नहीं पाया। वह सोच रहा था कि छोटू ने किस मित्र की आवाज़ में ये कहा- "लो मैं आ गया हूँ।" यह है किसकी आवाज़? अपने मित्रों की तो नहीं। क्या छोटू का कोई नया मित्र हो गया? उससे रहा नहीं गया और उत्साहित होकर वह छोटू की तरफ बढ़ा,'छोटू! लो मैं आ गया,' यह जो तुमने कहा किसकी आवाज़ है? क्या नया दोस्त है? कौन है? क्या वह आ रहा है? या उसके पास चलें?"

"अरे! मैं खुद नहीं जानता वह कौन है। मैंने उसे कभी नहीं देखा। सुना शायद हो और मैं इस आवाज़ में बोलने लगा। ऐसा करेंगे कभी, इस आवाज़ वाले लड़के को एक दिन सब लोग ढूंढने चलेगें।"

दूसरे सब मित्र आ गए। आते ही कूना ने पूछा, "छोटू क्या बात हो रही है? कोई झगड़ा तो नहीं हो रहा है कि तुम इतने दिन बाद आए?"

तब देखू ने कहा, "कूना! छोटू अपने किसी भी पुराने दोस्त की आवाज़ में अभी तक बात नहीं की। न मालूम किस अनजाने लड़के की आवाज़ में बात कर रहा है।"

कूना और सब ने छोटू से कहा, "छोटू बोलो। हम भी सुनें।"

"मैं घंटों उसकी आवाज़ में बोल सकता हूँ। इस आवाज़ के साथ मैं कुछ दिन पहले भी तुम सबके पास बताने आ रहा था पर नहीं आ पाया। आज मैं आ गया।" छोटू ने अज़नबी लड़के की आवाज़ में कहा।

बोलू ने कहा, "तो क्यों न हम उस लड़के को ढूंढने चलें और उसके साथ खेलें?"

छोटू ने कहा, "यह कठिन है। मैंने दुबारा उसकी आवाज़ सुनी नहीं।"

बोलू ने कहा, "पहली बार कब सुनी थी, कहाँ सुनी थी?"

छोटू ने कहा, "यह याद नहीं।"

कूना ने कहा, "वाह! यह कैसे हो सकता है कि जिसकी

तुम नकल करो और वह कहीं न हो? कहीं न कहीं तो वह ज़रूर होगा।"

"मैं! किसी की नकल नहीं करता। मैं जिसकी आवाज़ में बोलता हूँ उसकी असली आवाज़ में बोलता हूँ।"

"हाँ! यह बात तो है" चंदू ने कहा।

"उस अजनबी लड़के को हम जरूर ढूंढेंगे।" चंदू ने फिर कहा।

"और जल्दी! कहीं वह चला न जाए, गायब न हो जाए।" प्रेमू ने कहा।

"अगर चला गया, तो छोटू का उस तरह बोलना भी चला जायेगा।" भैरा ने कहा।

कूना ने कहा, "छोटू इस नए लड़के के बोलने को तुम अपनी पहचान बना लो और हमारी तरह मत बोलो। अपनी तरह बोलो।"

"मुझे लगता है छोटू, कि यही तुम्हारी आवाज़ है। यह दूसरे लड़के की आवाज़ नहीं। तुम अपनी आवाज़ पहचान नहीं पा रहे हो पर उसे पा गए हो। देखना ऐसा कोई लड़का नहीं होगा। हम लाख ढूँढें इस आवाज़ का लड़का नहीं मिलेगा। तुम इसी आवाज़ में बोलो, इससे कोई गड़बड़ी नहीं होगी।" बोलू ने कहा।

"अगर वह लड़का आ गया और उसने कहा मेरे जैसे बोलना बंद करो या मेरी तरह बोलना वापस कर दो तो मैं उसको लौटा दूँगा और मैं तुम सब की तरह बोलता रहूँगा।" छोटू ने कहा।

बोलू, बोलकर चलने वाली आदत
एक दिन चुप्पी जगह, चुपचाप छोड़ आएगा।

जब से बोलू चुप्पी वाली जगह जाने लगा, वहाँ वह चुप रहकर कुछ चल लेता था। और इस पार आकर भी उस अभ्यास से बिना बोले चलने लगा पर नहीं के बराबर। इस बात पर देखू का ध्यान सबसे पहले गया। उसने यह बात किसी से नहीं की। देखू को लग रहा था कि बोलू को चुप्पी जगह में ज़्यादा देर रुकना चाहिए। ज़्यादा देर रहेगा तो बिना बोले ज़्यादा चलेगा

भी। पलक झपकने वाले बाबा ने भी कहा था कि बोलू चुपचाप चलकर उनके पास आए और ऐसा होगा?

सबके मन में आता था कि चुप्पी वाली जगह कितनी लंबी चौड़ी है और कितनी दूर जाने पर जगह समाप्त होती है। वह कहाँ तक फैली है? जैसे ये सब लोग नाले के पार आते-जाते हैं, पक्षी भी तो? अब की बार ध्यान देंगे कि आकाश का पक्षी उस पार से इस पार आता है या नहीं। अगर उनका इस पार आना होता है तो क्या आकर वे चहचहाना शुरू कर देते हैं। क्या पलक झपकने वाले बाबा उस पार रह चुके हैं? उनकी जानकारी में चुप्पी वाली जगह होगी?

एक दिन चुप्पी वाली जगह जाने सब इकट्ठे हो रहे थे। भैरा आखिरी में आया। भैरा लंगड़ा रहा था।

"क्या हुआ भैरा?" कूना ने पूछा।

भैरा कूना की तरफ मुड़ा। भैरा ने कहा, "बाँए पैर में दर्द है।"

"कैसे हुआ भैरा" प्रेमू की आवाज़ आई।

भैरा प्रेमू की तरफ घूमा। प्रेमू ने छोटू की तरफ इशारा किया कि 'मैं नहीं छोटू मेरी आवाज़ में बोल रहा है।'

पर भैरा ने प्रेमू से कहा, "गिर पड़ा था।" फिर भैरा ने ऐलान किया कि "छोटू जिसकी आवाज़ में

मुझसे कुछ भी पूछेगा तो मैं छोटू को जवाब नहीं दूँगा। केवल उसे दूँगा जिसकी आवाज़ में पूछा है, जैसे उसने प्रेमू की आवाज़ में मुझ से पूछा तो मैंने प्रेमू को जवाब दिया। ऐसा तुम सब को करना चाहिए। हो सकता है इससे केवल अपनी ही आवाज़ में बात करने लगे।"

भैरा की बात ठीक लगी। बोलू, छोटू के पास जाकर उसका हाथ लेकर कहा, "हाँ छोटू, अपनी तरह से बोलो।"

"अपनी तरह से तो बोल रहा हूँ।" उसने बोलू से बोलू की आवाज़ में कहा।

फिर उसने भैरा की आवाज़ में कहा, "भैरा मैं तुम्हारी आवाज़ में तुमसे पूछ रहा हूँ कि तुम जवाब दो, क्या तुम चुप्पी-जगह हम सबके साथ जा सकोगे? क्या तुम नाले को कूद कर पार कर सकोगे?"

जब छोटू ने भैरा की आवाज़ में पूछा तो भैरा के लिए मुश्किल हो गई। क्योंकि उसने कहा था कि जिसकी आवाज़ में छोटू पूछेगा तो मैं उसी की तरफ घूमकर उसे जवाब दूँगा, छोटू को नहीं।

सब आश्चर्यचकित थे कि भैरा कैसे अपनी तरफ घूमें और अपने को जवाब दे।

भैरा ने पूछा कि "मैं अब क्या करूँ?"

सब कुछ न कुछ कहने लगे।

किसी ने कहा, "भैरा तुम अपनी आँख मूँद लो और सब की तरफ से मुँह मोड़ लो, घूम जाओ फिर जवाब दो।"

भैरा ने कहा, "नहीं! मैं जब अपने से कहूँगा तो उसे केवल मैं सुनुँगा। तुम क्यों सुनोगे? मैं कहूँगा और मैं सुनुँगा। तुम लोग अपने कान बंद कर लो।"

बोलू ने कहा, "भैरा हम सब नाले के उस पार जाना चाहते हैं। तुम लंगड़ा रहे हो। हम सबको जानना है कि तुम नाला पार कर सकोगे या नहीं?"

भैरा ने तब आसमान की तरफ मुँह किया और चिल्लाकर कहा, "हाँ! मैं नाला पार कर सकूँगा।" भैरा के उत्तर से सब खुश हो गए। यह कहकर भैरा ने लंगड़ाते हुए नाले की तरफ चलना शुरू कर दिया था और उसने सबको अपने पीछे आने के लिए इशारा किया। पहले तो सब भैरा को जाते देखते रहे फिर भैरा के पीछे चल पड़े। भैरा जाता, बीच-बीच में सबको पीछे आने का इशारा करता। नाले के किनारे भैरा रुक गया। कूना को लग रहा था कि भैरा जिस तरह लंगड़ा के जा रहा है, नाले के उस पार कूद नहीं पाएगा।

उसने सब से कहा, "मुझे डर लग रहा है, भैरा को उस पार कूदना नहीं चाहिए।" सुनकर भैरा को अच्छा नहीं लगा।

"तुम लोग यहीं रहो। मैं अकेले जाऊँगा।" और वह कूदने के लिए तैयार हो गया। सबने भैरा को रोका।

देखू ने कहा, "भैरा पहले मैं देख लूँ कि कहीं जंगली भैंसे का झुंड तो नहीं आ रहा है।"

प्रेमू ने कहा, "यदि जंगली भैंसे ने दौड़ाया तो भैरा दौड़ नहीं सकेगा।"

तभी देखू ने सबको सावधान किया, "ठहर जाओ। मुझे एक आदमी इधर आते हुए दिख रहा है।" देखू ने कहा, "बहुत लंबा आदमी है। मालूम नहीं कौन है? क्यों आ रहा है?"

दूर से आते हुए आदमी ने देखू के कहने को सुन लिया था। उसने वहीं से कहा, "हाँ, मैं आ रहा हूँ। पर मैं लंबा आदमी नहीं हूँ। एक लंबा लड़का हूँ। लंबे डग भरते हुए आ रहा हूँ।"

उसकी आवाज़ बिल्कुल पास से आ रही थी।

देखू ने सबसे कहा, "वह बहुत दूर से आ रहा है। फिर भी वह हमारी एक-एक बात सुन लेता है।

उसकी फिर आवाज़ आई। "मैं एक डग में इससे दस गुने चौड़े नाले को पार कर सकता हूँ। मैं तुम लोगों की बातें बहुत देर से सुन रहा हूँ। भैरा को मैं नाला पार करा दूँगा। उस पार की सैर भी सब को करा दूँगा।"

वे सब लोग मुँह में ऊंगली रख चुप हो गए थे कि कुछ भी बोलो वह सुन लेता है।

उसकी आवाज़ बहुत ज़ोर की थी। ऐसा लगता सबके कान में पास से और ज़ोर से बोलता है। लग रहा था कि चुप्पी जगह में उसका बोलना सबको सुनाई देगा। सबके मन में तरह-तरह की बातें आ रही थीं, गनीमत है कि लंबे डग वाले आदमी ने किसी के मन की बात नहीं सुनी।

उसने फिर कहा, "मित्रों, मैं बहुत दूर से आ रहा हूँ। एक यात्री ने मुझे इस चुप्पी जगह के बारे में बताया था। यात्री ने कहा था मुझे वहाँ जाना चाहिए और जानना चाहिए कि मैं चुप्पी जगह में बोल और सुन सकता हूँ कि नहीं। मैं चुप्पी जगह की चुप्पी को तोड़ दूँगा। मैं इतनी दूर से आ रहा हूँ कि यहाँ आते हुए एक साल बड़ा हो गया। और मैं यह बताना चाहता हूँ कि मैं आदमी नहीं तुम्हारे जैसा लड़का हूँ। मेरी उमर आठ साल की है। मैं तुम सबसे दोस्ती करना चाहता हूँ।"

कूना ने बहुत धीरे बोलू से कहा, "यह तो पेड़ के बराबर है। इससे कैसे दोस्ती होगी?"

पर उस लड़के ने कूना के कहे हो सुन लिया। उसने कहा जैसे बादल की गड़गड़ाहट हो। सब डर गये कि वह गुस्सा तो नहीं हो गया।

उसने कहा, "मुझसे कोई दोस्ती नहीं करना चाहता। मेरा दोस्त नहीं है, इसका मुझे दुख रहता है। मुझे अपना दोस्त बना लो।" उसके कहने में याचना थी। बादल की गड़गड़ाहट नहीं। गिड़गिड़ाहट थी।

सुनकर सबने कहा, "दोस्त। हमने तुमको दोस्त बना लिया।"

सुनकर वह खुश होकर हँसने लगा। उसकी हँसी थी, पर अट्टाहास नहीं। एक भोले-भाले लड़के की निश्छल हँसी थी।

कूना ने उससे पूछा, "तुमको आने में अभी कितनी देर लगेगी? साल भर तो नहीं लग जायेंगे? सालभर हम यहाँ खड़े नहीं रह सकते। शाम को हमें घर लौटना है। तुम कहोगे तो हम यहाँ एक साल बाद फिर आ जायेंगे। तब तक हम भी एक साल बड़े हो जायेंगे।"

"ठहर जाओ। घर मत जाना। मैं अभी आ जाता हूँ। मैं दौड़ लगाता हूँ।"

वह बहुत तेज दौड़ रहा था। देखू देख रहा था। इसके बाद सबने देखा कि दौड़ते-दौड़ते कुछ देर बाद वह कुछ ऊँचा दिखने लगता था, और पास भी।

देखू ने कहा, "अब वह बिल्कुल पास आ गया है ।" और वह पास आ गया था। और बहुत खुश था।

कूना ने तब अपने कान बंद कर लिये थे। उसके चेहरे की तरफ ठीक से देख नहीं पा रही थी। वह पैजामा और कुर्ता पहने हुआ था। उसके भी बाल घुँघराले थे। कूना के देखा-देखी सभी ने अपने कान बंद कर लिये थे।

चित्र : हबीब अली

(इस धारावाहिक की पिछली किश्त के चित्र हबीब अली ने बनाए थे।)

वह हाँफ रहा था फिर भी उसने जैसे अति उत्साह से कहा, "अपन नाले के उस पार चलेंगे।" तभी उसने अपना एक पैर नाले के किनारे, इस पार रखा और दूसरा पैर उस पार रख दिया।

उसने कहा, "भैरा। मैं तुम्हें उठाकर उस पार करा दूँगा।" फिर उसने कहा, "पर भैरा है कौन?"

भैरा ने इतना सुना तो उसने लंबे डग वाले लड़के का हाथ पकड़ा और कहा,"मैं हूँ भैरा।"

लड़के ने हाथ से लटके भैरा को नाले के उस पार आसानी से ले गया।

इसके बाद एक-एक कर देखू, चंदू, प्रेमू, सुबोध, कूना, बोलू सब उस पार कूदे। चंदू, प्रेमू और सुबोध लंबे डग वाले लड़के के सामने से कूदे। बोलू और कूना उसके पीछे से। सामने से कूदने वालों को लड़का सहारा दे रहा था।

उस पार की धरती पर आते ही सब ने हल्ला मचाने की असफल कोशिश की। सन्नाटा जैसे और बढ़ गया। अभी देखू, चारों तरफ देख रहा था। उसने आसमान की तरफ भी देखा। लंबे डग वाले लड़के ने दूसरे पैर को भी पार कर लिया था। वह चुपचाप था, और उम्मीद में था कि यह चुप्पी जगह उसकी आवाज़ से ठीक हो जायेगी। हल्ला मचाकर थके सब लड़के लंबे डग वाले लड़के को घेरकर खड़े हो गये थे। पर घेरकर खड़े उनको लंबे डग वाले लड़के ने लाँघकर कुछ दूर खड़ा हो गया। चहलकदमी करते हुए आस-पास को जानने की उत्सुक्ता थी। फिर सबके पास लौटा और आसमान की तरफ मुँह कर हाथों का पोंगा बनाकर चिल्लाया। वह लगातार चिल्ला रहा था। जबकि उसके दोस्तों को लग रहा था कि वह इतनी देर से चुप क्यों है। उसकी आवाज़ को सुनने उन लोगों ने कान को बंद भी नहीं किया था। फिर लंबे डग वाला लड़का चुप्पी न तोड़ पाने की निराशा में दौड़ते हुए दूर आँखों से ओझल हो गया। आसमान के एक कोने में घने बादल उठ रहे थे। बादल नाले के चुप्पी वाली जगह के उस पार ज्यादा थे। उस पार बिजली भी चमकने लगी थी। सबने सोचा कि

कड़कने की आवाज़ इस पार सुनाई देगी। पर, आवाज़ नहीं आयी। वे सब बोलना चाहते। बात करना चाहते थे। कूना को बात न कर पाने के कारण घबराहट सी होने लगी थी। कुछ बोल देने की इतनी जल्दी थी कि सबके साथ वह कूदकर लौट जाना चाहती थी।

लंबे डग वाला लड़का भागते हुए चुप्पी वाली जगह को कहीं दूसरे छोर से लाँघ गया हो? वह न मालूम हमारे कितने दिनों की दूरी को इस थोड़ी सी देर में पार कर गया हो। सब नाले के किनारे खड़े होकर, लड़के का रास्ता देख रहे थे। वह कहीं किसी संकट में न हो। उसमें भी बचपना था।

सबको लग रहा था कि ज्यादा देर रुकने में खतरा है। रुकने से और रुकने की इच्छा तब भी थी। चाहे कारण कोई भी हो। ज्यादा देर रुक गये, फिर उसके बाद भी रुक गये, फिर देर तक का रुकना, कैदखाना हो जायेगा। एक स्थिति में अब कहीं जा नहीं सकते यह सोचने वाला कैदी हो जाता है। अब भी थोड़ी हिम्मत सबमें बची थी, इसीलिए अबतक रुके थे। बची हिम्मत भी तो कम हो रही थी।

देखू ने देखा लंबे डग वाला लड़का आ रहा है। सबने देखा। डूबते सूरज का प्रकाश उसके बाँयी तरफ था। पेड़ों, खुली जगह में उसकी लंबी परछाईं पड़ रही थी। वह उदास होगा। अपनी आवाज़ से चुप्पी जगह की चुप्पी तोड़ नहीं पाया था। उसे उम्मीद थी और उसकी उम्मीद किसी भी पेड़ के एक घोंसले में चिड़ियों के नन्हें बच्चों की चहचहाहट सुरक्षित बची हो जैसी थी।

पृथ्वी में जीव के आने के पहले ध्वनि थी कि नहीं, यह कौन बता सकता है? ध्वनि रही भी होगी तो सुनने वाला जीव ही उसे सुन सकता होगा। सुनने वाले जीव के आने के बाद ध्वनि का जन्म हुआ यह कहा जा सकता है। सुनना और सुनाना दो जीवों के बीच हो सकता था। कोरस तो कई जीवों के बाद हुआ होगा। जीव का जन्म महत्वपूर्ण था। पक्षियों ने कभी इस तरफ घोंसले, पृथ्वी के इसी तर्ज़ पर बनाये होंगे। जंगली भैंसे भी दिखते हैं। आखिर यहाँ ध्वनि क्यों नहीं है? सुनने और सुनाने वाले उस पार से इस पार के भी आए हुए हैं। पक्षी अपने बच्चों के कारण इसी तरफ के हो गए पर चुप्पी वाली यह जगह उनके लिए पिंजड़ा बन चुकी थी।

सब चुप्पी वाली जगह से लौट गये थे। चुप्पी वाली जगह से लौटते हुए भी चुप थे। पलक झपकने वाले बाबा का आस-पास होने को सोचकर या बोलने के लिए जो इतने उतावले हो रहे थे लौटते समय वहाँ कुछ देर रहने की आदत से चुपचाप लौट रहे हों।

घर समीप आने लगा था। लंबे डग वाला लड़का दौड़ लगाकर अपने घर जा सकता था। उसी ने चुप्पी तोड़कर कहा, “मैं कुछ दिन तुम लोगों के साथ रहूँगा।” वहाँ एक मैदान था।

“मैं इसी मैदान में रह लूँगा” लड़के ने कहा। उसने जैसे ही मैदान पर अपना पैर रखा तो कहा, “लो मेरा भी घर आ गया। और मैं अपने घर में माँ की गोद में बैठ जाता हूँ।” वह धरती पर बैठ गया। अभी भी उसकी आवाज़ ज़ोर की थी पर उसमें कोमलता थी। प्रेम था। मित्रता पाने के बाद उसकी ज़ोर की आवाज़ ज़ोर की मिठास लगती।

लड़के ने खुश होकर कहा, “आकाश की छत वाला मेरा घर। मेरा पता। सुनो! मेरे माता-पिता कई दिन नहीं आने पर भी चिंता नहीं करते। वे तुम सब के माता-पिता की तरह ऊँचे हैं। मुझे उन्होंने पहाड़ के नीचे पाया था। मैं जब दूर रहता हूँ और उनसे जब कोई पूछता है कि मैं कहाँ हूँ तो वे कहेंगे- मैं पास में हूँ। मैं उनसे दूर कभी नहीं जाता।”

कूना, “रात को नहीं पहुँचोगे तो चिंता नहीं करेंगे?”

लड़का, “नहीं! एक साल दूर रहूँ तो भी। हमारे घर में दो कमरे हैं। एक कमरा छोटा है। पर दूसरा कमरा मैदान है, ऐसा ही। वह कमरा मेरा है।”

अचानक सब चुप हो गए और देर तक चुप रहे।

(जारी) चक मक

पुस्तकालय की परिकल्पना की ओर एक कदमः लाइब्रेरी एडूकेटर कोर्स (एलईसी)

हममें से कई लोग इस बात से सहमत होंगे की बच्चों के जीवन में भी साहित्य का एक विशेष स्थान है। पर अक्सर इस स्थान की कल्पना हमारी शिक्षा और देश के हजारों बच्चोंके जीवन में धुंदली या लुप्त होती है। और साहित्य के नाम पर क्या उपलब्ध है, क्या नहीं यहभी तो एक प्रश्न है। जैसे ही ये बात सामने आती है, ढेरों और मुश्किलें और सवाल खड़े हो जाते हैं - अच्छी किताबें हैं की नहीं, जगह है की नहीं, बच्चे पढ़ेंगे भी कि नहीं, देख-रेख कैसे होगी, पुस्तकालय है कि नहीं?

एक सक्रिय, जीवंत पुस्तकालय की मौजूदगी हर समाज और खास तौर पर सीखने-सिखाने के माहौल की ज़रूरत है। जिस समाज में ऐसा पुस्तकालय का अनुभव मौजूद होता है वो समाज अपने आप में कई संवेदनाओं, अनुभवों और दुनियाओं को समेटे हुए साथ चल सकता है। पुस्तकालय अपने आप में एक स्वतंत्र संस्था की तरह है जिसका हमारे जीवन में अपना एक अस्तित्व होता है, यदि हम उनमे से हैं जिन्होंने इस अनुभव को प्राप्त किया। पर यह भी सच है की यह अनुभव हर किसी के जीवन में नहीं होता है। हमारे कई बच्चे, और शायद हमारे जैसे वयस्क, पुस्तकालय रहित जीवन यापन करते हैं।

कोर्स के दौरान-पढ़कर सुनाने की गतिविधि
चुनिन्दा बाल साहित्य पढने का अतिरिक्त समय

शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले चाहें वो एक एनजीओ से हों, सरकार से हों या एक व्यक्ति ही क्यों न हों, यह ज़रूरी है की हम इन अनुभवों को बच्चों के जीवन में दाखिलकरने के रास्ते बनाएं। पराग, टाटा ट्रस्ट द्वारा चलाया जाने वाला लाइब्रेरी एड्यूकेटर कोर्स इस दिशा में एक कदम है जो इस परिकल्पना को लेकर चलता है कि एक दोस्त्नुमा वयस्क, किताबों की दुनिया से अवगत और संवेदनशील व्यक्ति ही, इस काम को संभव करने की ओर हमें ले जा सकते हैं। यह कोर्स ऐसे तमाम टीचर, लाइब्रेरियन, या शिक्षा के क्षेत्र में संलग्न लोगों के व्यवसायिक विकास के लिए है, जिनका साहित्य की ताकत में यकीन है, और पुस्तकालय के माध्यम से सभी तक पहुँचने में भी यकीन है। यह कोर्स तैयार करता है वयस्कों को की वो बच्चों को समझें, उनकी ज़रूरतों को समझें और उसके अनुसार अपने पुस्तकालय में हर बच्चे के लिए एक ऐसी जगह की संभावना बनाएं,जहाँ किताबों के साथ उनके रिश्ते को लगातार पोषित किया जा सके। और यह सिर्फ इसलिए नहीं की वो पढ़-लिख जाएँ, बल्कि इसलिए की साक्षरता के सफ़र में पढने-लिखने के मायने बनें उनके जीवन के लिए और वो सच में दुनिया को पढ़ पाएं अपने नज़रिए से सिर्फ शब्दों में नहीं, बल्कि अपने विचार, अनुभव, द्वन्द या तर्क में।

लाइब्रेरी एडूकेटर कोर्स में तीसरे बैच को हाल में ही इस सफ़रमें आगे बढ़ने के लिए तैयार किया गया है। देश के भिन्न राज्यों, संस्कृतियों और बच्चों के साथ काम करने वाले हमारे प्रतिभागी इस सात महीने के सफ़र में सैधांतिक और प्रायोगिक - पुस्तकालय कार्य को इन दोनों नज़रों से समझने का प्रयास करते हैं। कोर्स के इस सफ़र में तेरह दिन की क्लासेज के अलावा, कुछ लिखित असिस्न्मेंट, एक फील्ड प्रोजेक्ट कार्य और कई चर्चाओं सहित एक कोर्समेंटर या मार्गदर्शक का सहयोग रहता है। कोर्स की जानकारी इस वेबसाइट पर प्राप्त की जा सकती है : www.libraryeducators.in यह कोर्स हर साल मई में आरम्भ होता है और नवम्बर तक चलता है। इसमें आवेदन देने के लिए ऊपर लिखी वेबसाइट पर जाएँ या हमें लिखें : parag@tatatrusts.org।

एक्सपर्ट लाइब्रेरियन से बातचीत के अवसर कोर्सबुक में विशेष लेखों का संकलन

अजा शर्मा
फैकल्टी- लाइब्रेरी एडूकेटर कोर्स

www.libraryeducators.in parag@tatatrusts.org

कुछ पहेलियां ऐसी हैं, जिन्हें सुलझाते-सुलझाते हम चीज़ों के गुणों को समझ पाते हैं। यहां ऐसी ही एक पहेली है, अगर सुलझा पाए तो सोचना कि यह क्यों हुआ?

अपनी प्रयोगशाला

तैरते ढक्कन को बीच में लाओ

प्रतिका

तैरते ढक्कन को बीच में लाओ

एक गिलास लो और इसको पानी से लबालब भर दो। (पानी इतना ही भरो कि गिलास से गिरने न पाए।) अब धीरे से एक बोतल का ढक्कन इसमें तैरा दो और थोड़ा इंतज़ार करो।

देखो गिलास में ढक्कन कहाँ जाकर रुका?

अब करना यह है कि ढक्कन को सीधे या किसी वस्तु से छुए बिना बीच में लाना है और वो भी इस तरह कि ढक्कन वापस किनारे पर ना जाए, बीच में ही रुका रहे।

कोई तरकीब सोचो! इसे बीच में तुम कैसे रुका सकते हो?

तुमने जो प्रयास किया, उसका क्या परिणाम हुआ, लिख लेना।

अब एक तरकीब आज़मा कर देखो।

एक ड्रॉपर लो और इस ड्रापर से बूँद-बूँद कर गिलास में पानी डालो। पानी इतना डालना कि गिलास के किनारे से भी ऊपर तक भर जाए।

क्या ढक्कन बीच में आया? ज़रा सोचो, ऐसा क्यों हुआ होगा ?

अब जब ढक्कन बीच में है, गिलास पर पानी की सतह को ध्यान से देखो।

पानी की सतह कैसी दिखाई दे रही है?

क्या वो बीच में से उठी हुई है?

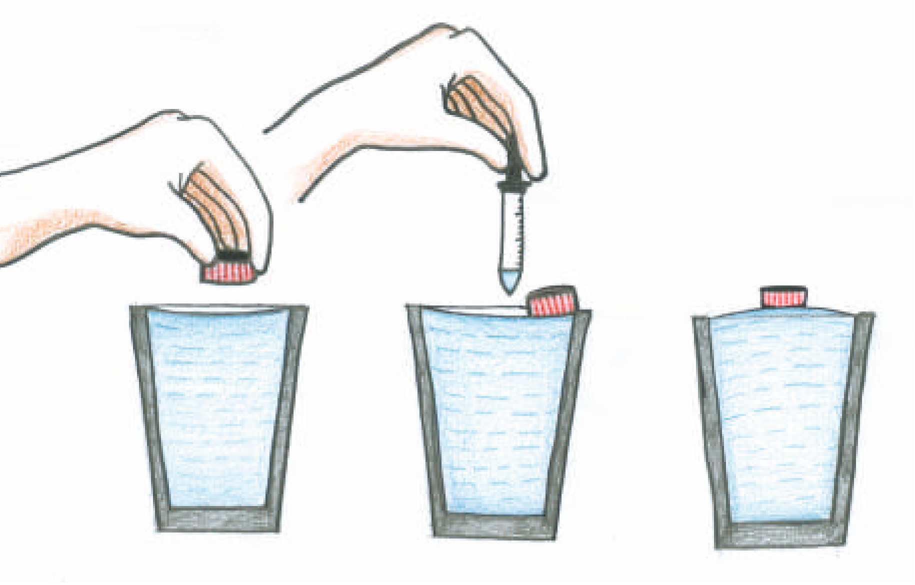

चित्रः अंकिता ठाकुर

कारण समझना

चीज़ें हमेशा ऊंचाई पर तैरती हैं। पहले पानी की सतह किनारे पर उँची होती है तो ढक्कन उस ऊँचाई की तरफ जाता है और किनारे पर तैरने लगता है पर जब हम बूँद-बूँद कर पानी डालते हैं तो पानी की सतह बीच में ऊँची और किनारों पर नीची हो जाती है। ढक्कन तैरकर सबसे ऊंची जगह यानी बीच में आ जाता है।

अब तुम यह सोचने लगो कि ड्रॉपर से पानी डालने पर पानी गिलास के बीच में क्यों इकट्ठा होता है?

ईश्वर अल्लाह तेरे नाम

प्रियंवद

मोहसिन दूसरे दिन भी नहीं आया। तीसरे दिन भी नहीं। डर के साथ अब लाजवन्ती की बेचैनी भी बढ़ रही थी। "तू जब से लौटी है, परेशान दिखती है।" माँ ने पूछा था।

लाजवन्ती चुप रही थी। वह नीचे वैद्य जी के पास भी गई थी।

"यह घर हमारा है न?" उसने पूछा था।

"हाँ।"

"हम न चाहें तब भी?"

वैद्य जी ने उसे ध्यान से देखा। "क्यों क्या हुआ?"

लाजवन्ती कुछ नहीं बोली। समय उस पर भारी था। मोहसिन क्यों नहीं आया? उसे चिट्ठी तो मिली होगी? लाजवन्ती ने तय किया उसके घर जाएगी।

"हमारी मन्नत पूरी हो गई है। मैं दरगाह का डोर खोल आऊँ।" उसने माँ से पूछा।

"जल्दी क्या है?"

"दूसरे लोगों को मन्नत का डोरा बाँधने के लिए जगह मिलेगी।"

"ठीक है शाम को चलूँगी।"

"छुट्टी है..मैं चली जाती हूँ।"

"अकेले?"

"क्या हुआ स्कूल भी तो जाती हूँ। अब मैं बड़ी हो गई हूँ।"

"अच्छा?" माँ कपड़ो पर इस्त्री कर रही थी। रूक गई। ऊपर से नीचे तक उन्होंने लाजवन्ती को देखा। "सचमुच बहुत बड़ी हो गई है! मुझे तो पता भी नहीं चला। जा... पर जल्दी आना।"

लाजवन्ती घर से निकल आई। दरगाह ज़्यादा दूर नहीं थी। रास्ता जानती थी। सगीर की दुकान भी जहाँ से मोहसिन का घर दिखता था। पीले रंग का...बड़ी खिड़कियों वाला। सगीर दुकान पर ही था। उसने लाजवन्ती को पहचान लिया। उसके लिए ही मोहसिन अलग चादर दे गया था। मज़ार पर उसने वही चादर चढ़ाई थी।

"कैसी है बेटीजान?" उसने लाजवन्ती से पूछा।

"फिर चादर चढ़ानी है?"

"नहीं मेरी नानी ठीक हो गई। मन्नत का डोरा खोलना है।"

"मौला अपने नेक बन्दों का बहुत ख्याल रखता है।"

"मोहसिन से मिलना भी है।" लाजवन्ती धीरे से बोली।

अब सगीर ने ध्यान से लाजवन्ती को देखा। छोटी-सी लड़की। लाल रिबनवाली दो चोटी। मासूम चेहरा। बड़ी फ्रॉक। पाँवों में चौड़े पट्टे की सैन्डिल।

"क्या नाम है आपका?"

"लाजवन्ती।" वह भूल गई थी कि उसे हुस्ना बताना था।

"कहाँ रहती है?"

"नाचघर के पीछेवाले मकान में।"

"वह तो वैद्य जी महाराज का घर है?"

"वह मेरे दादा जी हैं।"

"तुम वैद्य जी की पोती हो?" सगीर की आवाज़ में जोश और गर्मी बढ़ गई। "यानी बबुआ की बेटी?"

"हाँ।" लाजवन्ती के पिता को सब बबुआ कहते थे।

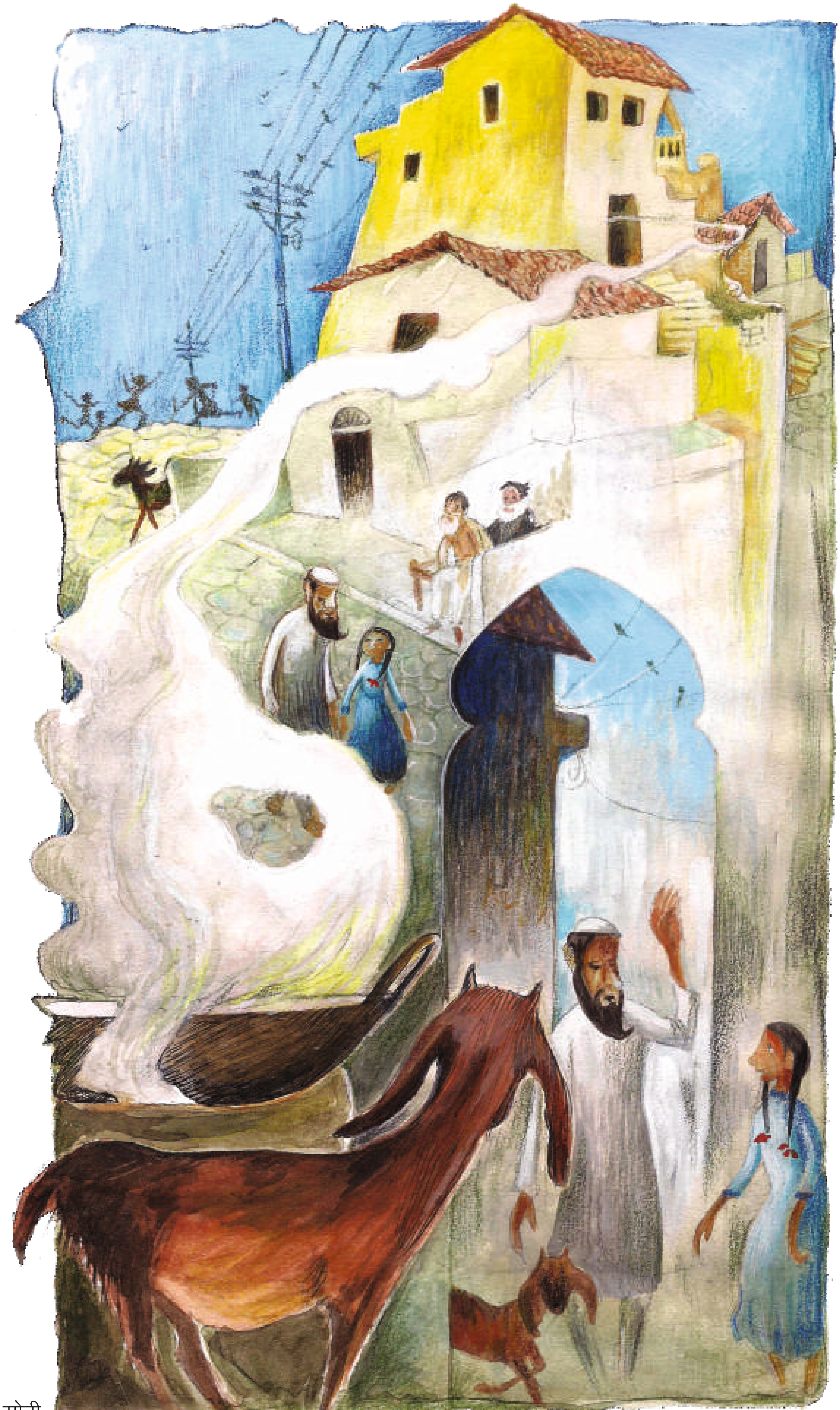

लाजवन्ती कुछ नहीं बोली। समय उस पर भारी था। मोहसिन क्यों नहीं आया? उसे चिट्ठी तो मिली होगी? लाजवन्ती ने तय किया उसके घर जाएगी।

चित्र : प्रशान्त सोनी

वह मर्चेन्ट नेवी में काम करते थे। साल में एक बार चार महीने के लिए घर आते थे। इस बार वह छुट्टी भी नहीं मिली थी।

“अरे..तुमने पहले क्यों नहीं बताया? कितना बड़ा गुनाह हो गया!” सगीर ने अपने गाल पर चाँटे मारे। “मैंने तुम से चादर के पैसे ले लिए। अपनी बिटिया से पैसे लिए!” वह अपने गाल पीट रहा था।

“आप दादा जी को जानते हैं?” लाजवन्ती का संकोच, भय खत्म हो गया था।

“आज से नहीं बेटीजान। उनके मेरे ऊपर बड़े एहसान हैं। जब रावण बनते थे मुझे सीता की सहेली बनावा दिया था। बुरे दिनों में साथ दिया।”

“मुझे डोरा खोलना है।” लाजवन्ती ने कहा।

“और मोहसिन से मिलना है?” सगीर ने पूछा।

लाजवन्ती ने सर हिलाया।

“चलो..पहले मोहसिन से मिलते हैं। उसे तीन दिन से बुखार है।” सगीर दुकान से उठ गया। उसने लाजवन्ती का हाथ पकड़ा।

“तुम अकेली आई हो?”

“हाँ।”

सगीर ने उसे पीला घर दिखाया। “वह देखो...मोहसिन का घर। बड़ी खिड़की उसके कमरे की है।” लाजवन्ती का हाथ पकड़कर उसने दरगाह की भीड़ पार की।

कच्ची सड़क, बकरियाँ, खाट पर बैठे बूढ़े, बिजली के झूलते तार, गली में खेलते बच्चे, चूल्हों से उठती तेल की महक, सिवई के ढ़ेर, अल्म्यूनियम के बर्तन और खिड़की पर लटके टाट या पुराने कपड़े के पर्दे पार करके वह एक तंग अँधेरी सीढ़ी के सामने रूक गया।

“दूसरी मंज़िल पर मोहसिन का घर है..चलें?”

लाजवन्ती ने सर हिलाया। लाजवन्ती का हाथ पकड़े हुए दीवार के सहारे सगीर ऊपर आया। बीस सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद उसने एक दरवाजा खटखटाया।

“बीबी...” सगीर ने आवाज़ दी। कुछ ही देर में दरवाज़ा खुला। सामने मोहसिन की माँ थी। उन्होंने सगीर को देखा फिर लाजवन्ती को।

“बड़ी प्यारी बच्ची है।” उन्होंने लाजवन्ती के सर पर हाथ रखा।

“बताओ कौन है?”

“बताऊँ?”

“हाँ”

“आसमान की परी रास्ता भूल गई है।”

“अरे नहीं...अपने वैद्य जी महाराज की पोती है..लाजवन्ती और मोहसिन की दोस्त भी। मोहसिन से मिलने आई है।”

“माशाअल्लाह!” वह दरवाज़े के एक ओर हट गई। “आओ।”

लाजवन्ती एक क्षण झपकी फिर अन्दर आ गई।

“आपकी दुआओं वाली चादर चढ़ाई थी। मेरी नानी ठीक हो गई।” वह बोली।

“तो मोहसिन ने तुम्हारे लिए वह चादर बनवाई थी?” वह हँसी। उन्होंने सगीर को देखा। सगीर भी मुस्कराया। “पुरानी दोस्त है बीबी... इनका तो खत भी आया था। मोती जैसे हरफ लिखती हैं।”

“हाँ.. मैंने सोन ख्वाब से लिखा था।”

“बोलती है तो भी मोती झरते हैं।”

वे एक खुली जगह में आ गए थे। नीचे लोहे का जाल था। ऊपर भी। जाल के चारों ओर कमरे के दरवाज़े थे। एक ओर बाल्टी रखी थी। एक चौकी थी, खाली गमला था, कपड़े थे, बरतन थे। मोड़कर रखी हुई चारपाई थी। उसके बाद एक कमरा था। दरवाज़ा बन्द था।

“मोहसिन अन्दर लेटा है। बुखार है।” उसकी अम्मी ने दरवाज़ा ढकेला।

“देखो कौन आया है?” मोहसिन ने करवट बदली। उसने दरवाज़े पर देखा। कुछ क्षण उसे समझने में लगे। लाजवन्ती मुस्कराती हुई आगे आई। अविश्वास से मोहसिन की आँखें फैल गईं।

“तुम?” वह लगभग चीख पड़ा।

“तुम बैठो बिटिया..मैं कुछ देर बाद आऊँगा, तब मज़ार का डोरा खोलने चलेंगे।” सगीर पीछे से बोला।

लाजवन्ती ने सर हिलाया। अम्मी और सगीर कमरे के बाहर आ गए।

“कुछ खिलाओ बिटिया को बीबी...” बाहर आकर सगीर ने कहा।

“नहीं सगीर भाई.. वैद्य जी महाराज की पोती है। पता लगा हमारे घर कुछ खाया है तो बच्ची पर भारी गुज़रेगा।” सगीर चुप हो गया। उदास भी। “आता हूँ।” सर झुकाकर वह चला गया।

“बुखार था इसलिए नाचघर नहीं आया।” मोहसिन ने दरवाज़े पर खड़ी लाजवन्ती को सफाई दी। लाजवन्ती आगे आई। उसने मोहसिन के माथे पर हाथ रखा। माथा जल रहा था।

“तुम्हें तेज़ बुखार है।”

मोहसिन कुछ नहीं बोला। लाजवन्ती की नन्हीं मुलायम उँगलियाँ उसके माथे पर चिपकी थीं। उसने धीरे से अपनी हथेली उसकी हथेली पर रखी।

“अकेली आई हो?”

“हाँ”

“सोन ख्वाब से कब आईं?”

“परसों” लाजवन्ती की हथेली अभी तक मोहसिन के माथे पर थी। उसकी हथेली पर मोहसिन की हथेली। वह उसके पलंग के पास खड़ी थी।

“वह खींच लो।” मोहसिन ने एक मोढ़े की ओर इशारा किया। लाजवन्ती ने हथेली हटा ली। उसने वह मोढ़ा खींचकर पलंग के पास रख लिया।

“तुम हुस्ना हो?”

“नहीं..भूल गई।” लाजवन्ती हँसी।

“तुम्हें डर नहीं लगा?”

“नहीं।”

“क्यों?”

“पता नहीं...सगीर बाशा की दुकान तो मालूम थी।”

“वह न मिलते तब?”

“पता नहीं।” अब लाजवन्ती ने कमरे में चारों ओर देखा। छोटे थोड़े तिरछे कमरे में एक ओर मोहसिन का पलंग था। मेज़ और कुर्सी थी। कोने में जूते थे। साइकिल में हवा भरने का पम्प था। खूँटी पर स्कूल के कपड़े लटके थे।

“देखो...” मोहसिन उठकर बैठ गया। उसने खिड़की की ओर इशारा किया। “यहीं से चाँदनी आती है। हरहराती हुई। पूरा कमरा भर जाता है। तुम्हारी चिट्ठी मैंने इसी खिड़की पर बैठकर पढ़ी थी।” लाजवन्ती ने बाहर देखा। अलग तरह की चीज़ें थीं। मज़ार..दरगाह..मस्जीद की मीनारें..हरे झण्डे यतीमखाने के गुम्बद। आसमान के नीचे इस दुनिया को वह पहली बार देख रही थी।

“और यह देखो” मोहसिन पलंग से उतर गया। पलंग के नीचे से बक्सा खींचा। उसे खोला। उसमें रखी चीज़ें निकालीं। तस्वीर, चाँदी की डिबिया, लट भी। लाजवन्ती की चिट्ठी, हरसिंगार के नौ फूल भी। “मैं तुम्हारे लिए सोन ख्वाब के रंगोंवाले रूमाल लाई हूँ।” लाजवन्ती ने जेब से तह करके रखे दो रूमाल निकाले। मोहसिन को दिए।

“बहुत अच्छे रंग हैं।” मोहसिन बोला।

“वहाँ के आसमान के हैं..चिड़ियों के हैं।”

मोहसिन ने बक्से में सामान वापस रखा। साथ में रूमाल भी रख दिए। बक्सा वापस पलंग के नीचे सरका दिया। पलंग पर फिर बैठ गया।

“परसों नाचघर में लोग आए थे।” लाजवन्ती धीरे से बोली।

“क्या?” मोहसिन की आँखें फैल गईं।

फिर लाजवन्ती ने मोहसिन को सब बताया। नन्हीं ममेड का सपना..दरवाज़ा खुलना.. मेडलीन.. पियानोवाला.. पुल पर कोहरा.. गीत.. लट लन्दन के बैंक में रखी वसीयत.. सीढ़ियों पर पंजों के निशान.. काला बच्चा.. पादरी हेबर.. नाचघर का

बिकना.. उसका घर भी। मोहसिन चुपचाप सब सुन रहा था। उसका चेहरा सफेद हो रहा था।

"अब?"

"अब क्या?"

"तुमने बताया किसी को?"

"नहीं..बताने पर माँ पूछेगी मुझे कैसे पता? फिर सब बताना पड़ेगा।"

"फिर?"

"क्या पुलिस हमें नाचघर जाने के लिए पकड़ लेगी?"

"धत..हमने कुछ चुराया थोड़ी है।"

"क्यों यह तस्वीर, चाँदी की डिबिया.. लट.. और दूसरे के घर में चोरी से घुसना। वहाँ नाचना?"

"नाच ही तो रहे थे।"

"हाँ.. नाच ही तो रहे थे।" लाजवन्ती धीरे से बोली।

"दोनों फिर चुप थे। कमरे में सन्नाटा हो गया। इतना कि खिड़की की सलाखों पर बैठी गिलहरी की आवाज़ सुनाई दे रही थी।" फिर लाजवन्ती ने जैसे कोई भूत देख लिया।

"अच्छा..जब हम बड़े होंगे तब?" लाजवन्ती ने पूछा।

"तब क्या?"

"तुम रोशनदान से नहीं निकल पाओगे.. मैं दरवाज़े से..तब?"

"बड़े होने पर तो हम कहीं भी मिल सकते हैं।"

"पर नाच नहीं सकते।" दोनों फिर उदास हो गए। देर तक उदास रहे।

"हम बहुत दिन से नाचे नहीं।" लाजवन्ती ने कहा "चलो नाचें।" मोहसिन पलंग से उठ गया।

"पर तुम बीमार हो।"

"नाचने में क्या है।" मोहसिन मुस्कराया।

मोहसिन की हथेली पर लाजवन्ती ने हथेली रखी.. दूसरा हाथ उसके कन्धे पर वे नाचने लगे। उनका नाच तेज़ हुआ। "मैं पियानोवाले का गीत गाऊँ?"

"हाँ..गाओ"

मोहसिन गाने लगा "नील गगन..."

लाजवन्ती के बाल हवाओं में घूमने लगे। केशों से केसर वन उड़ रहे थे।

बस..कुछ देर बाद लाजवन्ती रूक गई। मोहसिन पलंग पर बैठ गया। इतने में ही थक गया था वह। लाजवन्ती भी साँस लेती हुई मोढ़े पर बैठ गई। दोनों फिर चुप थे। किसे बताएँ? क्या करें?

"एक काम करते हैं।" लाजवन्ती बोली।

"हम मन्नत का डोरा बाँधेंगे। तुम अपनी अम्मी से कहना वह एक चदार बनाकर उसमें अपनी दुआएँ काढ़ देगीं। हम उसे भी चढ़ा देंगे। मेरी नानी ठीक हो गई थी। भगवान सबसे बड़े हैं। बच्चों की बात ज़रूर सुनते हैं। उनसे कहेंगे नाचघर न बेचें।"

"हाँ..यह ठीक है।" मोहसिन भी खुश हो गया। तभी बाहर से सगीर ने आवाज़ दी।

"तुम कब आओगे नाचघर?" लाजवन्ती उठ गई।

"तीसरे दिन।"

"ठीक है।" लाजवन्ती कमरे से बाहर आ गई। बाहर सगीर और मोहसिन की अम्मी खड़े थे।

"इसे घर तक छोड़ना।" उन्होंने सगीर से कहा। सगीर ने सर हिलाया। लाजवन्ती को नीचे ले आया। उसी रास्ते से लौटकर मज़ार पर आया।

"तुम अपना डोरा खोल लो।" सगीर मज़ार के बाहर रूक गया। लाजवन्ती अन्दर गई। उसने अपना डोरा पहचाना। उसे खोल दिया। पास ही नए डोरे पड़े थे। एक नया डोरा उठाया। कुछ क्षण सोचा फिर प्रार्थना पढ़कर डोरा बाँध दिया।

(जारी)

वैष्णवी तदस, 7वीं

और बाँट देता उन सब में

अम्मा मेरी ये दो आँखें,
मुझको बड़ी ही भाती हैं,
ज्यों कर लूँ मैं बन्द इन्हें तो,
खूब अँधेरी छाती है।

इन अँखियों से मीठे-मीठे,
सपने देखूँ मैं कई सारे,
चन्दा मामा यही दिखाते,
सुन्दर और सलोने तारे।

लगता है इन अँखियों को
कोई जादू-सा आता,
इनसे ही तो गोलम-गोल,
लड्डू मैं ढूँढ पाता।

बनाता मैं ढेरों आँखें
अगर मुझे बनाने आते,
और बाँट देता उन सबमें अम्मा
जो देख न पाते।

–अभिनन्दन गोपाल,
किलकारी बाल भवन पटना, बिहार

–नाम नहीं लिखा, थ्री टू वन स्कूल मुम्बई, महाराष्ट्र

विज्ञापन

किसान भाईयों को 2100 करोड़ रुपए का धान बोनस

- किसानों को खेती के लिए सहकारी समितियों में ब्याज मुक्त ऋण दिया जा रहा है। इस वर्ष बिना ब्याज के 3800 करोड़ का ऋण देने का लक्ष्य।
- कृषक जीवन ज्योति योजना के तहत 3 हार्स पावर तक सिंचाई पम्पों के लिए 6000 यूनिट और 3-5 हार्स पावर तक के सिंचाई पम्पों के लिए 7500 यूनिट बिजली हर साल निःशुल्क।
- समर्थन मूल्य पर विपणन वर्ष 2016 में 13.28 लाख उपार्जित धान पर प्रति क्विंटल 300 रूपए बोनस के मान से 2100 करोड़ रूपए का बोनस दिया जाएगा।
- राज्य में वर्ष 2003 में विद्युतीकृत सिंचाई पम्पों की संख्या लगभग 94 हजार थी, जो वर्ष 2015-16 में बढ़कर लगभग तीन लाख 70 हजार तक पहुंच गई।
- प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना-खरीफ 2016 छत्तीसगढ़ के 13.66 लाख किसान शामिल, जिसमें 12 लाख 9 हजार ऋणी तथा 1 लाख 56 हजार अऋणी किसान।
- राज्य में कृषि विज्ञान केन्द्रों की संख्या 20।
- इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय परिसर रायपुर में देश का सबसे बड़ा कृषि संग्रहालय स्थापित।
- राज्य के 32 लाख से ज्यादा किसानों के खेतों की मिट्टी की जांच एवं स्वायल हेल्थ कार्ड का वितरण।
- किसानों की आमदनी दोगुनी करने के लिए छत्तीसगढ़ सरकार ने बनाया रोडमेप वर्ष 2022।
- राज्य को कृषि उत्पादन में केन्द्र सरकार से चार राष्ट्रीय कृषि कर्मण पुरस्कार। जिसमें तीन पुरस्कार धान (चावल) और एक पुरस्कार दलहन

C - 62554/1
दिनाँक: 03/10/2017

सबका साथ - सबका विकास

छत्तीसगढ़ जनसंपर्क

माथापच्ची

1 गीत ने रस्सी के दोनों सिरों को मिलाकर सपाटसतह पर सबसे अधिक क्षेत्रफल वाली एक आकृति बनाई है। उसने कौन-सी आकृति बनाई होगी?

2 आना-जाना उसको भाए,
जिस घर जाए टुकड़े कर आए
(आरी)

3 भूरा बदन रेखाएँ तीन,
दाना खाती हाथ से बीन
(गिलहरी)

4 एक ऐसी चीज़ है जिसे केवल गीला होने पर ही इस्तेमाल किया जा सकता है। तुम्हें पता है वो क्या है?

चित्रः अंकिता ठाकुर

सुडोकू

इस अंक से हम माथापच्ची में एक नया खेल शुरू कर रहे हैं। इस खेल को सुडोकू कहते हैं। इस खेल का उद्देश्य है दिए हुए बॉक्स में 1 से 4 तक के अंक भरना। आसान लग रहा न? पर ये अंक ऐसे ही नहीं भरने। अंक भरते समय हमें यह ध्यान रखना है कि 1 से 4 तक के एक ही पंक्ति और स्तम्भ में दोहराएं न जाएं। साथ ही साथ, इस बड़े डब्बे में आपको चार डब्बे दिख रहे होंगे। ध्यान रहे कि उन डब्बों में भी 1 से 4 तक के अंक दुबारा न आएं। थोड़ा कठिन लग रहा? करके तो देखिए, जवाब अगले अंक में आपको मिल जाएगा।

सुडोकू			
	2		4
		4	
1			3

चित्र पहेली

► बाएँ से दाएँ

▼ ऊपर से नीचे

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / भोपाल / 261 / 2015-17

हम स्वतंत्रता से यह समझते है

हम स्वतंत्रता से यह समझते है कि किसी के गुलाम न होना बल्कि आजाद रहना। जिसमें अपनी इच्छा अनुसार करना। गुलाम तो वह है जो दूसरों के अधीन रहता है। उसके निर्देशानुसार चलता है। लेकिन आजादी में अपनी मनमानी कर सकते आप जो चाहे वो कर सकते है। लेकिन स्वतंत्रता बहुत कम लोगो को मिली है। जिसके कारण वे अपने इच्छा को प्रकट नही कर पाते। चाहे उसे पिंजरे में बंद करके उसे अच्छा-अच्छा खाना-पीना दे लेकिन बिना स्वतंत्रता के वे भोजन भी क्या है - चाहे वह चाँदी की थाली में ही क्यों न खाना दे।

...अगर हम कही जाना या घूमना चाहते है तो बोलने वाले बहुत होते है। कि लड़कियों को चुल्हा-चौकी और घर का काम-काज में ध्यान देना चाहिए। जब महिला-पुरुष को समान अधिकार दिया है तो ऐसे क्यू कहते है।

अगर हमें स्वतंत्रता मिले तो हम सबसे पहले यह करेंगे की हम जितने तक पढ़ना चाहते है वे सब करेंगे और सब खेले खेलेंगे जैसे कबड्डी, कुश्ती, फुटबाल आदि खेलेंगे। चूल्हा-चौकी तो करेंगे ही नही जब हमारी उमर शादी करने के योग्य होगी तब खान पकाना शुरू करेंगे। ऐसे में क्या होता है कि हम अभी सुबह-शाम खाना पकाने में लगे रहेंगे तो पढ़ाई किस समय करेंगे, मैं यह नहीं कह रही हूँ कि खाना मत पकाना। पकाना, मगर सुबह-शाम नही पकाना चाहिए। जब घर के लोग काम में बीजी रहते है और कहते की आज खाना पका दो बेटी तो खाना पकाना चाहिए या तबियत खराब हो जाने पर।

-कुमारी शालिनी, धमतरी, छत्तीसगढ़

प्रिया 13 एआईएम ट्रस्ट, चेन्नई, तमिलनाडु

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोनः 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादकः सुशील शुक्ल